बदलते दृश्य

– तनसिंह

प्रकाशक :

श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास
ए/8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर – 302 012
दूरभाष : 2466353

श्री क्षत्रिय युवक संघ ग्रन्थमाला का पुष्प

प्रथम संस्करण : 1960
ग्यारहवाँ संस्करण : 2018

मूल्य : रुपये बीस मात्र

मुद्रक :

गजेन्द्र प्रिन्टर्स
मंदिर सांगाकान, सांगों का रास्ता,
किशनपोल बाजार, जयपुर
दूरभाष : 0141-2313462

विषयानुक्रमणिका

* लग्न की परीक्षा 07
* सत्यमेव जयते 08
* भगवान की गोद 10
* स्वधर्म पालन 12
* वह राम ही था 14
* दुर्भाग्य का सहोदर 16
* उत्तरा की माँग 20
* विजय का स्वयंवर 22
* मात्र युद्ध 24
* जय सोमनाथ 27
* उत्तर भड़ किंवाड़ 30
* पाबू 34
* चुनौती 37
* बड़गड़ाँ-बड़गड़ाँ 41
* सुख और स्वातन्त्र्य 48
* स्वर्ग में स्वागत 54
* बदलते दृश्य 58
* धरती का सुहाग 68
* पुनरागमन 71
* नाजोगे ? 75
* स्वप्न 78

लेखक की ओर से.........

(प्रथम संस्करण)

सन् 1950 के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में मैंने एक शिक्षण शिविर के सिलसिले में चित्तौड़ को अपने जीवन में पहली बार ही देखा। देखने के दो महीने के बाद तक उस कसक और वेदना से मुक्त नहीं हो सका जो उसके प्रत्येक पत्थर और स्मारक में कसमसा कर मूक हो गई है। कलम का सहारा लेकर मैंने उन भावनाओं को 'वैरागी चित्तौड़ शीर्षक' देकर भाषा के बन्धनों में जकड़ कर मुक्ति की सांस ली। लेकिन क्षिप्रा के तीर प्राय: स्मरणीय वीर दुर्गादास की छत्री को सन् 1958 की फरवरी में देखकर सोई हुई वेदना फिर विद्रोह कर उठी। जब भुलावे के प्रयास विफल हो गए तो उन्हें भी 'क्षिप्रा के तीर' शीर्षक देकर दूसरा गद्य लिख दिया। कुछ अंतरंग साथियों ने आग्रह किया कि ऐसे तीन और लेख लिखकर पाँच लेखों को पुस्तक का रूप दे दिया जाय। 'बदलते दृश्य' शीर्षक से तीसरा लेख उसी आग्रह के फलस्वरूप लिखा जाने लगा, किन्तु लिखते-लिखते उसका बड़ा रूप हो गया इसलिये इसकी पृथक पुस्तक तैयार हो गई। शेष दो लेख मेरी आगामी पुस्तक 'होनहार के खेल' की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

मैं आयुवानसिंहजी के इस कथन से पूर्ण सहमत हूँ कि 'इतिहास के इतिवृत्तात्मक सत्य के अन्दर साहित्य के भावात्मक और सूक्ष्म सत्य के प्रतिष्ठापन की चेष्टा ही समाज में चेतना ला सकती है' और समाज में आत्म-सम्मान और आत्म-गौरव की भावनाओं का सृजन करना ही मेरी इस पुस्तक का लक्ष्य है। फिर भी यह पुस्तक केवल इसी उद्देश्य के लिये ही नहीं लिखी गई है। कभी-कभी हमारी भावनाएँ सीमाएँ तोड़ने लगती हैं और हृदय की अपार वेदना जब जीवन के सभी सुखों पर छा जाती है तब लेखक अपनी कलम चलाकर ही जी हलका कर लेता है। यह एक सत्य उद्देश्य है अथवा छलना, इसका निर्णय मैं दार्शनिकों पर छोड़ता हूँ, लेकिन जीवन जितना सत्य है छलना भी उतनी ही सत्य है। भगवान ने मन को विचार की प्रबल शक्तियाँ देकर शरीर की सीमाओं में बांधकर हमें छला

नहीं तो क्या किया? सुन्दर वस्तु सामने हो परन्तु इन्द्रिय-गम्य शक्तियों से परे हो तो उस सुन्दर वस्तु को प्राप्त करने के लिये हम मानव जीवन को छलना ही मान सकते हैं। इस पुस्तक में मैंने उस छलना का चित्रण करने की चेष्टा की है, कह नहीं सकता कहाँ तक सफल हुआ हूँ।

साहित्यकार इस पुस्तक को कहानी संग्रह भी कह सकते हैं, रूपक भी कह सकते हैं, लेख भी कह सकते हैं और गद्य-संग्रह भी कह सकते हैं, परन्तु मैं आदमी के नाम के बजाय आदमी की कीमत ज्यादा मानता हूँ इसलिए जो कुछ लिखा गया है उसे मैं अपनी अनुभूति का गाढ़ा पसीना कह सकता हूँ। साहित्य के बन्धन में इस पसीने को बांधकर कोई इसका मूल्यांकन करना चाहे तो उनके लिये मैं यही कहूँगा कि यह मेरे एकान्त में बहाए हुए आँसू हैं जिनकी कीमत संवेदनशील व्यक्ति के सामने बहु-मूल्य है और भावनारहित व्यक्ति के सामने निरा पागलपन।

पुस्तक को लिखते हुए मैंने ऐतिहासिक सत्य के साथ सर्वथा न्याय किया है, उसके साथ मैंने साहित्य कल्पना को दूर ही रखा है परन्तु महानता के समक्ष सिर झुकाने में मैंने कहीं कृत्रिमता नहीं दिखाई है, बल्कि अपनी श्रद्धा, कृतज्ञता और भक्ति की अभिव्यक्ति करने के लिये भाषा को साधन बनाया है। परन्तु मैं अनुभव करता हूँ भाषा ने मेरे साथ इतना होते हुए भी पूर्ण सहृदयता नहीं बताई, फिर भी यह टूटे-फूटे शब्द पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हैं।

इच्छा होते हुए भी कुछ प्रदेश ऐसे रह गये हैं जिनका कुछ विवरण इस पुस्तक में आ सकता था किन्तु तत्सम्बन्धित ऐतिहासिक अध्ययन पूरा न होने के कारण कोटा, झालावाड़, अलवर और बाँसवाड़ा तथा भारत के इतर प्रदेश रह गए, इसका मुझे खेद है। महाराणा प्रताप, दुर्गादास आदि के लिये अतिरिक्त प्रकरण इस पुस्तक में होने चाहिए थे, किन्तु उनके लिये एक अलग पुस्तक 'होनहार के खेल' में स्थान दिया गया है, अत: उनका वर्णन भी यहाँ नहीं आ सका।

इस पुस्तक को तैयार करने और प्रकाशित करने में जिन लोगों ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सहयोग दिया है, उनका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। जो कोई भी हितैषी इस पुस्तक के सम्बन्ध में सुझाव देंगे उन्हें मैं आगामी संस्करण में कार्यान्वित करने का भरसक प्रयास करूंगा।

– *लेखक*

प्रकरण : एक

लग्न की परीक्षा

छविग्रह में जब मैं पहुँचा तब चित्र शुरू हो गया था। देखने वालों की कमी नहीं थी किन्तु उनमें भी अधिक वे लोग थे जो दृश्य बनकर लोगों की आँखों में छा जाते थे। मैं तो आत्मविभोर सा हो गया।

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

* * *

क्रोधित होकर आवा दहक रहा था। जिन्दगी दुबक कर घड़ों में छिपी हुई बैठी थी और बाहर मौत लपलपा कर अपना नाक चाट रही थी। तीन दिनों तक वह गुर्राती रही और प्रभु के राज्य की नींव अन्तरतम की गहराइयों में लगती जा रही थी। शिलान्यास हो चुका था। पार्थिव और लौकिक धारणाओं की छाती पर अपार्थिव और अलौकिक विश्वास की प्राण-प्रतिष्ठा हो चुकी थी। बिल्ली के नन्हें-नन्हें बच्चे म्याऊँ-म्याऊँ करते पूंछ हिलाते और दाँत निपोरते हुए बाहर आ गए। एक सच्ची लग्न का जन्म हुआ। मंगल महोत्सव सशरीर प्रगट हो गया था। उसी लग्न को फुफकारते विषधरों के सन्मुख डाला गया, गहरे समुद्रों में फैंका गया, ऊँचे पहाड़ों की चोटियों से गुड़ाया गया, मतवाले हाथियों के पैरों तले कुचलवाया गया, वर प्राप्त होलिका के साथ दहकती अग्नि में तपाया गया परन्तु उसे न साँप खा सके, न सागर डूबा सके, न पहाड़ तोड़ सके, न हाथी कुचल सके और न आग ही जला सकी।

लग्न की अन्तिम परीक्षा की घड़ी उपस्थित हुई। आज उसके समक्ष पिता की श्रद्धा पुत्र की निष्ठा को पराजित करने के लिये तुली हुई थी। व्यष्टि और परमेष्टि की दूरी के बीच भावनाओं की तराजू के पलड़े कभी इधर और कभी उधर झूल रहे थे। कर्तव्य उलझन में पड़ा हुआ बाल नोंच रहा था। निष्ठा ने भावनाओं को रौंद कर कर्तव्य से आलिंगन कर लिया। थंभा चूर-चूर हो गया। उसमें प्रगट हुआ वह जो सर्वत्र होकर भी अप्रगट है। जुल्मों की कहानियों का उपसंहार हो गया। पाशविक बल ने अपने जीवन में एक बार और निर्बल दिखाई देने वाले आत्मबल के आगे घुटने टेक दिये। आज भी लोग उसी प्रहलाद का नाम लेकर पुलकित हो रहे हैं, परन्तु वह प्रहलाद भी एक क्षत्रिय था।

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

प्रकरण : दो

सत्य मेव जयते

न्यायालय में न्याय अपनी निजी कुर्सी पर बैठकर निर्णय करने जा रहा था। दर्शकों से अदालत खचाखच भरी हुई थी। आज एक अनूठे मुकदमे की सुनवाई होने वाली थी।

वादी के कटघरे में विश्वासपूर्ण मुद्रा लिए सत्य प्रविष्ठ होकर बोला–

'न्यायमूर्ते! मैंने प्रतिवादी को अपना समस्त राज्य दान में दे दिया है, परन्तु वह स्वीकार नहीं करना चाहता। मेरे राज्य का उपयोग करने के लिये उसे बाध्य किया जाय।'

लोगों की निगाहें प्रतिवादी के कटघरे की ओर घूम गई। भगवें वस्त्रों में वृहस्पति की भाँति सुशोभित होते हुए त्याग ने प्रतिवाद किया–'परन्तु महाराज! वादी ने वह दान अपनी स्वप्नावस्था में किया है, जिसे कैसे स्वीकार किया जा सकता है?'

सत्य–'भगवन्! मैं सदैव देता आया हूँ, लेता कुछ नहीं। यह मेरी सांस्कृतिक परम्परा है। प्रतिवादी स्वप्न के बहाने का दान करना चाहता है। ऐसी फिसलनों और बहानों में मैं बह सकता हूँ ऐसी मान्यता प्रतिवादी के मन में है। यह मेरा मूल्यांकन किया जा रहा है। इसे मैं अपना अपमान मानता हूँ। मैंने वचन दे दिया है, फिर वह चाहे स्वप्न में ही क्यों न हो। मेरी परम्परा ने अपने ही नहीं, सृष्टि और ईश्वर के स्वप्न सच्चे किये हैं। मेरी निगाहों में स्वप्न सत्य है किन्तु सत्य स्वप्न नहीं। त्याग ने मेरे यहाँ बड़े सौभाग्य से अतिथि बनना स्वीकार किया है फिर चाहे उसने बेहोशी में ही मेरा द्वार क्यों न खटखटाया हो। मेरे द्वार पर त्याग अभ्यागत बनकर आया है, उसे निराश लौटाने पर इतिहास मुझ पर लज्जित होगा। त्याग के आतिथ्य-सत्कार का सर्वप्रथम मेरा और एक मात्र मेरा अधिकार है।'

बीच में ही सरकारी वकील बोल उठा–'यह अहंकार है, वादी से उसकी कीमत मांगी जाय।'

प्रतिवादी ने हाँ में हाँ मिलाते कहा,–'हाँ महाराज! यदि वादी को इतना अहंकार है तो अपने दान की मैं दक्षिणा चाहता हूँ।'

विजयभरी मुस्कान में सत्य ने नम्रतापूर्वक कहा,–'स्वीकार है। दक्षिणा में आपको दस लक्ष स्वर्ण मुद्राएँ........।'

प्रतिवादी,–'परन्तु मुद्राएँ तो राज्य की हैं जिसे वादी ने पहले ही मुझे दे दिया है।'

वादी,–'तो यह लो! मैं डोम के घर बिकता हूँ, मेरी महारानी ब्राह्मण के यहाँ सेवावृत्ति करेगी, मेरा राजकुमार पञ्चतत्व को प्राप्त हो गया। यह देखो, मैं उसके कफन का आधा हिस्सा और श्मशान शुल्क का एक टका माँग रहा हूँ। मैं अपना हिस्सा लेकर ही रहूँगा अन्यथा रोहिताश का दाह-संस्कार नहीं होने दूंगा! हाँ! हाँ! हाँ! मैं उसकी साड़ी का भी आधा हिस्सा ले रहा हूँ क्योंकि यही तो उसका कफन है। कर्तव्य के समक्ष स्त्री का स्नेह और पुत्र की ममता मुझे नहीं डिगा सकती। अभी तो क्या हुआ, श्मशान कर का टका बाकी है–क्या अब भी तुम्हारी दक्षिणा नहीं चुकी।'

प्रतिवादी चुप हो गया। उसने आँखें नीचे की ओर झुका ली। सरकारी वकील बगलें झांकने लगा और न्याय ने उठते हुए फैसला दिया–'सत्यव्रती राजा हरिश्चन्द्र की जय।'

अदालत उठ गई। दर्शक कानाफूसी करते हुए जा रहे थे कि वह एक क्षत्रिय था। चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

* * *

प्रकरण : तीन

भगवान की गोद

राजा उत्तानपाद का पुत्र ध्रुव अपने पिता की गोद के लिये ललचाने लगा किन्तु सौतेली माँ सुरुचि की डाह का शिकार बनकर तिरस्कृत हो अपनी माँ सुनीति के पास गया और पूछने लगा, 'माँ! क्या मेरे भी पिता हैं जिनकी गोद में दो क्षण बैठकर स्नेह का एक आध कटाक्ष भी पा सकूँ?'

सुनीति कहती है,-'हाँ बेटा! तेरे पिता भगवान हैं। जिनके लिये इस संसार की कोई गोद खाली नहीं होती उन्हें प्रभु की गोद सदैव आमन्त्रित किया करती है।'

और ध्रुव निकल पड़ा घर से घोर जंगलों में, अपने छिपे हुए पिता की खोज में। अकड़ते हुए तूफान उसे झुकाने आए किन्तु स्वयं झुक कर चले गए, उद्दण्ड और हिंसक जन्तु आए उसे भयभीत करने के लिये किन्तु स्वयं नम्रतापूर्वक क्षमा माँगते हुए चले गए, घनघोर वर्षा प्रलय का संकल्प लेकर आई उसकी निष्ठा को बहाने, किन्तु उसकी निर्दोष और भोली दृढ़ता को देखकर अपनी झोली से नई उमंगें बाँट कर चली गई, कष्ट और कठिनाइयों ने सांपों की तरह फुफकार कर उसे स्थानभ्रष्ट करना चाहा किन्तु वे भी उसे पुचकारते हुए उत्साहित कर चले गए। उसे बालक समझ कर नारद लौट जाने का उपदेश देने आए थे पर गागर में सागर की निष्ठा देखकर भावमग्न हो अपनी ही वीणा के तार तोड़ कर चले गए।

एक दिन ऐसा उगा कि पहाड़ पिघलने लग गए, नदियों का प्रवाह ठोस होकर सुन्न पड़ा गया, उसकी तपस्या के तेज से स्वयं सूर्य निस्तेज होकर व्याकुल हो उठे, सृष्टि के समस्त व्यापार विस्मयविमुग्ध हो हतप्रभ से ठिठक कर रुक गए, और तो और स्वयं जगत् पिता का अडिग सिंहासन डगमगाने लगा। क्षीरसागर वेदना से खौल उठा। ब्रह्माजी ने वेदपाठ बन्द कर भगवान की ओर देखा और भगवान अपनी गोदी का आँचल पसार कर गरुड़ की सवारी छोड़कर पैदल ही दौड़ पड़े-'बेटा! रहने दे। मैं तेरा पिता हूँ। मुझे

थोड़ी नींद आ गई थी। आ, मेरी गोद में बैठ-देख, यह कब से सूनी पड़ी है।'

'परन्तु सुरुचि माता के कहने पर आप मुझे धक्का तो नहीं देंगे?'

'नहीं बेटा, मेरी गोद में तेरा अटल और अचल स्थान रहेगा, जो जन्म-जन्मान्तरों की तपस्या के बाद योगियों और तपस्वियों के लिये भी दुर्लभ है।'

पुजारी ने पूज्य को ही अपना पुजारी बनाकर छोड़ा। मोह रहित भी मोहित हो गए। निराकार साकार हो गए। मायारहित होकर भी जगत्पिता की आँखों में स्नेह के बादल उमड़ आए।

ध्रुव अपने घर लौट रहा था और राह के पेड़-पौधे, लता-गुल्म और पशु-पक्षी कह रहे थे-'ध्रुव! तुम निश्चय ही एक क्षत्रिय हो।'

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

✻ ✻ ✻

प्रकरण : चार

स्वधर्म-पालन

'इन देवदारू वृक्षों की रक्षा के लिये मैं यहाँ स्वयं भगवान पशुपतिनाथ द्वारा नियुक्त हूँ। आज सात दिनों की प्रबल भूख के पश्चात् मुझे यह गाय स्वयं प्राप्त-भोजन के रूप में मिली है। तुम्हारे लिये गाय कुछ भी हो किन्तु मेरा केवल भोज्य-पदार्थ ही है। तुम्हारे शत्रुओं का मानमर्दन करने वाला यह अद्वितीय धनुष, भाग्य पर पुरुषार्थ का सिक्का जमाने वाले तुम्हारे ये प्रचण्ड बलशाली बाहू और अनेक बार तुम्हें विजयश्री से विभूषित करने वाले तुम्हारे यह अचूक बाण मुझ पर काम नहीं देंगे, क्योंकि मैं अपना धर्म पालन कर रहा हूँ।'

'पर मेरा भी तो कोई धर्म होगा?'

'है क्यों नहीं।'

'तो बताओ क्षत्रिय का धर्म क्या है?'

'रक्षा करना।'

'और जब किसी का स्वधर्म दूसरे के धर्म से टकरा रहा हो तब?'

'तब मूर्ख आपस में लड़ने की चेष्टा करते हैं और बुद्धिमान ऐसा मार्ग निकालते हैं जिससे दोनों का श्रेय साधन हो सके।

'तब मैं भी एक मार्ग निकालता हूँ। वनराज! तुम भूखे हो, इस गाय को छोड़ दो और मेरे शरीर को खाकर अपनी भूख मिटाओ।'

सिंह अवाक् रह गया। उसकी युक्ति में उसी का गला फंस जाएगा ऐसी उसे कभी कल्पना ही नहीं थी। निरुत्तर होते हुए भी उत्तर दिया-'तब तो तुम्हें मैं बुद्धिमान मानकर भी मूर्ख मानता हूँ। तुम्हारे पास एक छत्र साम्राज्य, उमड़ता हुआ यौवन, ऋषि को संतुष्ट करने के विपुल साधन और अपरिमित तेज है। इस तुच्छ प्राणी के लिये इतना त्याग मैंने आज तक नहीं सुना।

नरेश! तुम लौट जाओ। तुम्हारा दोष नहीं है। न तुम्हारे शस्त्रों का दोष है। मुझे तो भगवान का वरदान ही ऐसा है कि मुझ पर कोई शस्त्र काम नहीं देता। तुम विवश हो इसलिए संतुष्ट होकर लौट जाओ।'

'इसका अर्थ हुआ मैंने प्रकृति के वश होकर क्षत्रिय के घर जन्म लिया और अब परिस्थितियों से परवश हो क्षत्रिय धर्म त्याग दूँ। विवशता से उचित कार्य का त्याग संघर्षहीनता और कायरता है। ऐसे साम्राज्य के विवश सम्राट को धिक्कार है। ऐसे विवश यौवन, साधन और तेज को भी धिक्कार है! मैं ऐसी विवश जिन्दगी की अपेक्षा वश प्राप्त मृत्यु अच्छी समझता हूँ। भीख मांग कर जो सम्राट बनते हैं। वे अत्यन्त दीन हैं। साम्राज्य तो मौत का सिर तोड़कर बनाए जाते हैं। तुमने ऐसा त्याग नहीं सुना किन्तु राजा शिवि तो केवल कबूतर के लिये अपने आपको समाप्त करने को उतारू हो गए थे। मृगराज! मेरे वंश में इक्ष्वाकु हुए हैं, पृथु, मान्धाता और सत्यव्रती हरिश्चन्द्र हुए हैं। यह रघुकुल है। इसमें भागीरथ होगा, राम होगा, लव-कुश होंगे और भी जाने कितने ही महापुरुष एवं हुतात्मा होंगे। मेरे ही पूर्वज और मेरी ही सन्तति मुझे दास कहे ऐसे जीवन से मौत कहीं अच्छी है।'

और उस नरेन्द्र ने मृगेन्द्र के समक्ष अपने ही शरीर को समर्पित कर दिया। भय उसी से भय खाता है जो भय से भय नहीं खाता। परीक्षा पूर्ण हुई। परीक्षार्थी उत्तीर्ण हो गया और परीक्षक हार गया। स्वधर्म पालन की प्रेरणा के इतिहास में एक और पृष्ठ जुड़ गया, जिस पर आज भी लिखा हुआ है 'दिलीप नि:सन्देह एक क्षत्रिय था।'

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

* * *

प्रकरण : पाँच

वह राम ही था

जिस पुरुषोत्तम ने अजन्मा होकर भी महाभाग दशरथ के यहाँ जन्म लिया–

जिसकी सेवा के लिये स्वर्ग के सुख भोग कर अनेक देवता इस पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में अवतरित हुए थे–

जिसके द्वार पर सदैव भगवान शंकर योगी का भेष धारण कर केवल उसका दर्शन करने आते थे–वह राम ही था।

जिसने मार्ग चलते ही विश्वामित्र के सान्निध्य में धनुर्विद्या ही नहीं संपूर्ण युद्ध-विद्या में अद्‌भुत कौशल की शिक्षा प्राप्त कर ली थी–

जिसके चरण स्पर्श मात्र से पत्थर की मूर्तियाँ सजीव होकर उन चरणों की महिमा गाने लगती थीं–

दुर्मति राक्षसों द्वारा वध किए गए ऋषि मुनियों की हड्डियों के पर्वतनुमा ढेर को देखकर जिसने राक्षसों का समूल नाश करने का व्रत लिया था, वह राम ही था।

जिसने स्वयं अहिल्या का उद्धार किया था, किन्तु जिसके नाम का आश्रय लेकर आज भी असंख्य आत्माओं का संसार सागर से अनायास ही उद्धार हो जाता है–

दस हजार हाथियों के बल वाले राजा जिस शिव-धनुष को उठा ही नहीं सकते थे उसे जिसने खेल ही खेल में तोड़ डाला–

इक्की बार पृथ्वी को अपने संहारक परशु से निःक्षत्रिय करने वाले प्रबल पराक्रमी परशुराम भी अपना क्रोध जिसके प्रभाव के सन्मुख पी गए–वह राम ही था।

जिसने अपने पूज्य पिता की इच्छा-पूर्ति के लिये राज्य सुख के वैभव का त्याग कर जंगलों की कठिन भूमि पर वल्कल वस्त्र पहनकर शयन करना स्वीकार किया–

प्रेम-विह्वल हो जिसने भक्तिभाव से अर्पित भीलनी के झूठे बेर खाए–

मृग को मार कर भाई लक्ष्मण के साथ जब पंचवटी के आश्रम में आए तो सीताहरण से कुटिया को सूनी देखकर जिस भगवान की आँखों में सामान्य मनुष्यों के आँसू छलक आये–वह राम ही था।

सात सात ताड़ के विराट वृक्षों का छेदन कर बाली का वध करने वाले बाण जिसके हाथ से छूटते थे–

जिसने अपनी प्राण-प्रिया के अपहरण के वियोगजन्य दुःख को सहन कर धैर्यपूर्वक लोक-संग्रह कर बन्दरों और भालुओं की सेना खड़ी कर दी–

जिसके नाम से पत्थर अपने डूबने का स्वभाव भूलकर समुद्र में तैरने लग जाया करते थे–वह राम ही था।

जिसने रावण जैसे आततायी को भी मारने से पहले उसे सुधरने का मौका दिया और युद्ध को टालने की हर सम्भव और उचित चेष्टा की–

लक्ष्मण की मृत्यु पर जिस भाई की आँखों में प्रेमाश्रुओं की अविरल धारा बहने लगी और जो संयोग-वियोग रहित होकर भी साधारण लोगों की भाँति फूट-फूट कर विलाप करने लगा–

अपनी ही प्रियतमा पर अटूट विश्वास होते हुए भी पुनर्मिलन पर उससे अग्नि में अपनी पवित्रता को तपा कर जिसने निष्कलंकता का प्रमाण मांगा–वह राम ही था।

जिसने वैभव सम्पन्न स्वर्णिम लंका पर विजय प्राप्त करने पर भी उस राज्य को पराजित रावण के भाई विभीषण के लिये त्याग दिया–

जिसने लोकमर्यादा कायम रखने के लिये परीक्षित सीता जैसी पतिपरायण पत्नी को केवल लोकरंजन के लिये अपने हृदय पर पत्थर रखकर सदा के लिये निर्वासित किया–

तीन लोकों का अधिपति और सर्वसमर्थ होकर भी जो जीवन भर दुःखों और कष्टों की आग में जलता रहा–वह राम ही था।

जिसने अकेले ही हजारों अजेय राक्षसों का संहार किया–

जिसने कर्तव्य की कठोरता को भावनाओं की कोमलता के आगे कभी झुकने नहीं दिया और कर्तव्य की घड़ी उपस्थित होने पर अपने ही खून के टुकड़ों का खून करने के लिये, अपने ही हाथों अपने वंश को निर्वंश करने के लिये, जीवन की सुरम्य वाटिका में आग लगाकर अपने ही हाथों उजाड़ने के लिये लव और कुश जैसे पुत्रों से युद्ध करने को तैयार हो गया–वह राम ही था।

जिसके महान् चरित्र पर कलम चलाकर संस्कृत में वाल्मीकि, अवधि में गोस्वामी तुलसीदास और खड़ी बोली में मैथिलीशरण गुप्त महाकवि बन गए और जिसका मुक्तक वर्णन कर कई तुकबन्दी करने वाले भी कविराज बन गए, उस दिव्य चरित्र का जो अधिष्ठाता था–वह राम ही था।

वेद और पण्डित जिसका आज भी वर्णन करते थकते नहीं, मुनिगण अपने चित्त को एकाग्र कर जिसका आज भी ध्यान धरते हैं और जिसकी भक्ति में भक्तों ने इस पुनीत भारत में भक्ति की सुरसरी बहाई है–वह राम ही था।

और जो राम था वही पुरुषोत्तम भगवान राम एक क्षत्रिय था।

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

प्रकरण : छः

दुर्भाग्य का सहोदर

एक ओर सात और दूसरी ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना के बीच जीने और मरने की बाजी लग रही है। महाभारत का युद्ध चल रहा है। शस्त्र झनझना रहे हैं और शंख व रणभेरियाँ बज रही हैं।

यह कष्ट सहिष्णु कर्ण है।

'परशुराम से ब्रह्मास्त्र की विधि सीखने ब्राह्मण का वेश धारण कर गुरु का कृपा-भाजन बना। एक दिन गुरु इसकी जाँघ पर सिर देकर सो रहे थे कि एक कीड़े अलर्क ने इसे काटना शुरू किया। कीड़ा काटते-काटते माँस में घुस कर हड्डी तक को कुरेदने लगा। रक्त की धारा बह चली किन्तु गुरु की निद्रा में विघ्न न हो इसलिए बैठा रहा-अविचल पर्वत की भाँति, विधाता के विधान की भाँति, और उत्तर दिशा के दिग्पाल की भाँति डटा रहा।

'परन्तु दुर्भाग्य इसका सहोदर था इसलिए गुरु ने ऐसी गुरु भक्ति के लिये प्रसन्न होकर वरदान के स्थान पर क्रुद्ध होकर श्राप दे दिया।'

एक ओर सात और दूसरी ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना के बीच जीने और मरने की बाजी लग रही है। महाभारत का युद्ध चल रहा है। शस्त्र झनझना रहे हैं और शंख व रणभेरियाँ बज रही हैं।

यह कर्ण मातृ-भक्त भी है।

'यद्यपि इसकी माता कुन्ती ने इसके जन्म से ही इसे त्याग दिया-पेटी में बन्द कर नदी में बहा दिया था-मौत के मुँह में मौत और भाग्य से संघर्ष करने के लिये।

'यद्यपि लक्ष्यवेध होने पर द्रौपदी का अधिकारी हो गया था। किन्तु इसकी माँ ने इसके जन्म के भेद को गुप्त रखा इसलिए स्थान-स्थान पर सूतपुत्र और अज्ञातकुलशील का बताया जाकर वह अपमानित होता रहा।

'यद्यपि वह माँ की गोद के लिये जिन्दगी भर ललचाता रहा, कुल के

रहस्य की जिज्ञासा की वेदना में अनवरत जलता रहा और माँ ने उसको संपूर्ण आयु में एकबार भी बेटा कहकर स्नेह से नहीं पुचकारा।

'यद्यपि उसी की कोख में जन्म लेकर और पाँचों का सहोदर होकर भी कुन्ती ने इसे सदा उपेक्षित ही रखा। वह उन पाँचों की हितकामना में ही सदा रहती थी।

'तथापि जब वह अपनी गोद के अभय के लिये भीख माँगने आई तब वह ना नहीं कर सका। उसने उसके चारों बेटों पर आघात न करने का वचन दिया और उस वचन को निभाया।

'परन्तु दुर्भाग्य इसका सहोदर था। ऐसी मातृभक्ति के बाद भी माता ने अपने पाँचों पुत्रों को भी यह भेद नहीं बताया और जब वह रथ का पहिया ठीक कर रहा था तब अर्जुन, उसके बन्धु ने ही रण-नियमों का उल्लंघन कर कपट से उसे मार डाला।'

एक ओर सात और दूसरी ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना के बीच जीने और मरने की बाजी लग रही है। महाभारत का युद्ध चल रहा है। शस्त्र झनझना रहे हैं और शंख व रणभेरियाँ बज रही हैं।

यह कर्ण सत्यवादी भी है।

'जब उसे मालूम हो गया कि वह कुन्ती-पुत्र है, अर्जुन भीमादि का भाई है।

'जब उसकी माता ने आकर उसे पाण्डव पक्ष की ओर से युद्ध करने का आग्रह किया।

'जब उसके रूंधे हुए भ्रातृप्रेम का प्रवाह रोम-रोम में प्रवाहित हो उठा।

'तब उसने भावनाओं से भरी मातृदृष्टि से मुँह फेर कर उत्तर दिया था-कर्ण मझधार में घोड़े नहीं बदलता। जिसका साथ देने का एक बार वचन दे दिया है फिर किसी भी भयानक परिणाम से डरकर कायर की भाँति परिस्थितियों का मूल्यांकन करना कर्ण को शोभा नहीं देता। अपनी माँ, जिसके लिये मेरा हृदय जिन्दगी भर तड़पता रहा है, भाई जिन पर मुझे गर्व होना चाहिए अथवा और भी किसी सम्बन्धी के लिये मैं दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ सकता। मृत्यु पर्यन्त जिसका साथ देने का निश्चय मैंने कर लिया

है उस निश्चय की चाहे जितनी कीमत चुकानी पड़े, कर्ण उसके लिये सदैव तैयार रहेगा।

'परन्तु दुर्भाग्य उसका सहोदर था। ग्यारह अक्षौहिणी सेना होकर भी द्रोण, भीष्मादि जैसे महारथियों के सेनापति होते हुए भी दुर्योधन की पराजय हुई। सूर्य और कुन्ती का सत्यवादी पुत्र, सूतपुत्र के असत्य नाम-सम्बन्ध का अपने नाम से विच्छेद नहीं कर सका।'

एक ओर सात और दूसरी ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना के बीच जीने और मरने की बाजी लग रही है। महाभारत का युद्ध चल रहा है। शस्त्र झनझना रहे हैं और शंख व रणभेरियाँ बज रही हैं।

यह कर्ण महारथी भी है।

'जब वह रणभूमि में उतरता है तो ऐसा लगता है जैसे कोई कुशल कथावाचक वीर रस के किसी सरस छंद का मनोयोग से पाठ कर रहा हो; जैसे कोई उलझी हुई समस्या वर्षों से प्रयास के बाद अपना ही हल निकालने जा रही हो; जैसे ईश्वर का अचूक अभिशाप अपने दुर्दिनों के दुर्भाग्य को पीस डालने के लिये बांहें चढा रहा हो। जब उसके तरकश के बाण निकलते थे तो ऐसा प्रतीत होता था जैसे मोहमाया से हरे भरे संसार पर क्रुद्ध होने के कारण प्रलय की आँखों में चिनगारियाँ निकल रही हैं, जैसे संकट के समय जल्दी में आये भगवान विष्णु के बुलाने पर गरुड़ परिवार पंख लगे हुए पर्वत की तरह उड़ रहा हो।

'कलिंगराज चित्रांगद की राजकन्या के स्वयंवर में राज कन्या के अपहरण पर दुर्योधन की इसी अकेले वीर ने सैकड़ों राजाओं से रक्षा की, जिसके आगे त्रिलोकीनाथ ने भी भाग कर अपना नाम रणछोड़ करवाया था, उसी मगधराज जरासंध को इसी कर्ण ने बाहुकण्टक युद्ध से व्याकुल कर वश में कर लिया।

'उसकी बाण-वर्षा में इतना बल होता था कि तीनों लोकों का भार लिए सारथी रूप कृष्ण और गरुड़ध्वज सव्यसाची अपने रथ सहित कई कदम पीछे हट जाते थे।

'परन्तु दुर्भाग्य उसका सहोदर था। ऐसे कठिन और महत्त्वपूर्ण अवसर पर उसके रथ के पहियों को धरती ने निगल डाला और इसी प्रयास में उसे अपनी पराजय का मुँह देखना पड़ा।'

एक ओर सात और दूसरी ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना के बीच जीने और मरने की बाजी लग रही है। महाभारत का युद्ध चल रहा है। शस्त्र झनझना रहे हैं और शंख व रणभेरियाँ बज रही हैं।

यह कर्ण दानवीर भी है।

'प्रात:काल इसी का नाम आज तक लिया जाता है।

'इसके द्वार से न कोई निराश और न खाली हाथ ही लौटा। नित्यप्रति अपने समस्त स्वर्ण का दान तो इसका नित्यकर्म था किन्तु आई हुई विजय, कमाई हुई शक्ति और अमर जिन्दगी तक का भी बिना शिकन दान कर दिया।

'देवराज इन्द्र जब स्वार्थी होकर अपने पुत्र अर्जुन की रक्षा के लिये दिव्य कुण्डल और कवच प्राप्त करने आए तो अपने पिता सूर्य भगवान की चेतावनी के बावजूद भी वह ना नहीं दे सका।

'अपने ही प्रबल शत्रु के लिये उसकी उपेक्षा करने वाली माँ अभयदान लेने आई तब भी वह ना नहीं कर सका, और.......।

'जीवन की संध्या के समय परीक्षा के लिये कृष्ण और अर्जुन ब्राह्मण वेष धारण कर युद्ध की घायलावस्था में स्वर्ण मांगने आए तब उसने अपने दांत तोड़ कर उसमें लगी स्वर्ण-मेखों का दान किया।

'परन्तु दुर्भाग्य उसका सहोदर था। ऐसा श्रेष्ठ पुरुष होकर भी दुर्योधन के पक्ष की ओर चला गया इसलिए वेद-व्यास ही नहीं, आज भी उसकी सभी उपेक्षा करते हैं।

'परन्तु कौन नहीं जानता कि कर्ण एक क्षत्रिय था।'

एक ओर सात और दूसरी ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना के बीच जीने और मरने की बाजी लग रही है। महाभारत का युद्ध चल रहा है। शस्त्र झनझना रहे हैं और शंख व रणभेरियाँ बज रही हैं।

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

* * *

प्रकरण : सात

उत्तरा की माँग

'मैं युद्ध प्रयाण कर रहा हूँ। पिताजी आज यहाँ नहीं हैं। अपने हाथ दिखाने का स्वर्णिम अवसर आया है। श्रीकृष्ण ने कहा है कि ऐसा अवसर भाग्यवान क्षत्रिय को ही मिलता है। मुझ पर भाग्य प्रसन्न हुआ है।'

उसकी आँखें नीची ही रहीं।

'मैं महारथियों से भिड़ूंगा-अकेला होते हुए भी उनके दाँत खट्टे करूंगा। दुनिया को दिखा दूंगा कि पुत्र पिता से भी बढ़कर है। माता जी से स्वीकृति ले आया हूँ।'

उसने आँखें नीची ही रखीं।

'मैं तुमसे विदा लेने आया हँ-शायद इस संसार की यह अन्तिम विदा ही हो।'

वह उठ खड़ी हुई परन्तु उसने अपनी आँखें नहीं उठाई।

'क्या तुम भी माताजी की भाँति सोच रही हो कि मैं छोटा हूँ, अनुभवी नहीं हूँ। मेरा कितना दुर्भाग्य है कि लोग मुझे बच्चा ही समझते हैं, कैसे सिद्ध करूँ कि प्रौढ़ता की कसौटी उम्र नहीं, उत्तरदायित्वों के प्रति तीव्र और गहन तादात्म्य है। मैं कितना ही छोटा हूँ-मेरे सामने मेरा नहीं मेरे कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, मेरे स्वजनों के सम्मान का सवाल है, माँ के दूध और तुम्हारे सुहाग को मैं लज्जित नहीं कर सकता। क्या तुम्हें मुझ पर इतना भी विश्वास नहीं है?'

'मुझे विश्वास तो है, परन्तु.......'

'परन्तु क्या?'.......

'मेरे सामने मेरे कर्तव्य का प्रश्न है, मैं क्या करूँ? आप तो रण में अपना कौशल दिखायेंगे और मेरे कौशल के क्षेत्र तो सभी रूंधे हुए हैं। आपके कर्तव्य पालन को तो सभी लोग देखेंगे किन्तु मेरा भी तो कोई कर्तव्य होगा और मेरे उस कर्तव्य पालन को कौन देखेगा? स्त्री-योनि में जन्म देकर भगवान ने आप जैसे पति के साथ लगाकर भी मुझे कितना पीछे रख दिया है? हमारे अरमान कोई समझता नहीं, हमारी आकांक्षाएँ कोई सुनता नहीं, हमारे कर्तव्य को कोई देखता नहीं, हमारे दुखों को हमारे सिवाय सहन ही कौन कर सकता है?'

'देवी! मैंने तुम्हारा पाणिग्रहण किया है। तुम्हारे साहचर्य में रहकर मैंने तुम्हारी आकांक्षाओं, अरमानों और कठिनाइयों का अनुभव किया है। मेरा कर्तव्य ही तुम्हारा कर्तव्य है। मुझे हँस कर विदा दो, कुमकुम लगाकर विदा दो। मैं जानता हूँ मेरे कर्तव्य

से तुम्हारा कर्तव्य कठिन है। तुम्हें मेरी धरोहर को सुरक्षित रखना है, मेरे वियोग की आग में जलना है, हृदय पर पत्थर रखकर भी विदा देना है। मेरा सरल कर्तव्य निभाने में योग दो, तुम्हारा कठिन कर्तव्य निभाने में भगवान तुम्हारी सहायता करेंगे।'

और विदा पाकर अभिमन्यु तीर की भाँति चला युद्ध क्षेत्र में।

'स्यप्फ-स्यप्फ क्लाक्' तलवार चल रही थी जैसे मछलियाँ पानी में क्रीड़ा कर रही हों। सधे हुए हाथों से छूटे ब्रह्मास्त्र की भाँति वह टूट पड़ता था और जिस पर टूटता था उसके जीवन और मृत्यु को रौंद डालता था। भाद्रपद मास की बिजली के छोटे शिशु की भाँति वह कड़क उठता था और जिस पर कड़कता था उसके भाग्य को कुचल डालता था; क्रोधित रणचण्डी के उद्दण्ड भैरव की भाँति वह उछल पड़ता था। कौरवों के रथी, महारथी और अतिरथी विस्मयविमुग्ध होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। आकाश में दर्शनार्थी देवी देवताओं और यक्ष-गन्धर्वों का जमघट लग गया था। वे कुहनियों के हल्के धक्कों से अपने लिए बनाए मार्ग पर पंजों के बल खड़े होकर देख रहे थे-युद्ध के मूर्तिमान अवतार को कुरुक्षेत्र की क्रीड़ास्थली पर नरमुण्डों से खेलते और उधर विधाता क्रूरतापूर्वक खेल रहे थे अबोध पाण्डवकुमार के असहाय भाग्य से। तलवार टूट गई तो उसने रथ का पहिया उठा लिया। वह बढ़ना जानता था, हार कर जिन्दगी के लिए लौटना नहीं जानता था। वह प्रपंचों को तोड़ सकता था किन्तु उनकी रचना नहीं कर सकता था। वह भाग्य से अड़ना जानता था किन्तु उसे खुश नहीं करना जानता था।

'हलाहल विष ने अमृत-कलश को चारों ओर से घेर लिया। कौरवों के सात महारथियों के बीच अकेला अभिमन्यु इस प्रकार घिर गया जैसे सात निर्दय यमदूतों के बीच किसी वीर पुरुष की अन्तिम श्वास लोमहर्षक संघर्ष कर रही हो। अन्याय ने न्याय की छाती पर चढ़कर निर्लज्जता-पूर्वक अपना सिर ऊँचा उठा लिया, कायरता ने बल के हाथों अपना सतीत्व लुटा कर वीरता को कुचल डाला, पशुता ने विजय के साथ गठबन्धन कर पाण्डव कुल की निर्दोष दीप-शिखा को बुझा दिया। एक ओर धर्मक्षेत्र में धर्म-राज्य के लिये युद्ध हो रहा था और दूसरी ओर अवसर पाकर अधर्म फुफकारता हुआ हावी हो रहा था।

'विधाता की वह अमूल्य कृति कौड़ियों के मूल्य बड़ी बेहरमी से लुट गई, रूद्राणी की वीणा का सबसे सुरीला तार आलाप भरते ही टूट गया। सुभद्रा की कोख और उत्तरा की माँग ने युद्ध के जाज्वल्यमान इतिहास में अनमोल कड़ी जोड़ कर सदा के लिये विदा ले ली। कुरुक्षेत्र की रण-भूमि के चप्पे-चप्पे को याद है कि वह एक क्षत्रिय था।'

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

प्रकरण : आठ

विजय का स्वयंवर

एक दिन विजयश्री ने पूछा–'मैं कहाँ जाऊँ? सत्य युग की सृष्टिगत द्वन्द्वात्मकता में वेदमंत्रों से ही मैं आहूत कर दी जाती थी। उस समय संघर्ष का क्षेत्र शारीरिक व मानसिक न होकर आध्यात्मिक था। सतोभाव की आश्रय निष्ठा ही इतनी सबल थी कि संपूर्ण दृश्यगत बाह्य अन्तर की सत्ता से ही नियन्त्रित रहा करता था? मैं तो उस समय लोगों के अन्त:करण की एक दासी मात्र ही बनकर रह गई थी, फिर भी मेरी कामना में लोग हजारों वर्ष की कठिन तपस्याएँ किया करते थे। जन–जन का मानस और सृष्टि का कण–कण यज्ञ–मंत्रों व सुगन्धि से गुंजित व पुलकित रहता था। मेरी साधना के लिये तप: पूत ऋषि मुनियों के ही नहीं, सामान्य गृहस्थों के प्रयत्नों से भी मैं गद्‌गद् थी। मैं प्रभु से प्रार्थना करती रही कि सत्य युग कभी बीते ही नहीं किन्तु जिस प्रकार मेरे साधकों की परीक्षा के लिये मैं कठिनाइयों और कष्टों में प्रत्येक साधक को तपाती हूँ उसी प्रकार मुझे भी जगन्नियंता की परीक्षा में समय–समय पर उत्तीर्ण होना पड़ता है।

'सत्य युग न रुक सका और त्रेता का आगमन हुआ। परन्तु इस युग में भी मेरी अर्चना होती रही। यद्यपि उस युग में भी जनक जैसे साधक हो गए हैं जिन्होंने मेरी सर्वथा उपेक्षा की किन्तु उसी युग में दूसरी ओर भगवान ने राम के रूप में अवतार ग्रहण कर मेरी प्रसन्नता के लिये बन्दर और भालुओं की सेना खड़ी कर दी। उनकी लोक संग्रह की प्रवृत्ति ने लोगों को मेरी ओर इतना झुकाया कि विजयदशमी आर्य जाति का सांस्कृतिक त्यौहार हो गया। इस दिन अनेक साधक मुझे प्रसन्न करने के लिये अनेक प्रकार के प्रयोग करने लगे। मुझे त्रेता से भी कोई विशेष आपत्ति नहीं थी क्योंकि तब तक भगवान की अवतार–परम्परा ने मेरी आराधना का सक्रिय विरोध नहीं किया।

'परन्तु द्वापर के आते ही मेरे विरुद्ध व्यापक कार्य हो गया, स्वयं भगवान ने मेरा मुक्त कण्ठ से खण्डन किया। मेरे विरुद्ध निष्कार्म कर्म–योग

की षड़यंत्रकारी विचारधारा फैलाई गई और गीता ने मेरा मूलोच्छेदन करने का भागीरथ प्रयत्न किया। मैं सुख, वैभव, यश और आनन्द का उपहार मानव समुदाय को दे तो आई फिर भी मैं उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाने लगी। थोड़ी संख्या होते हुए भी संगठन, योजना, कार्यप्रणाली, राजनीति, पुरुषार्थ, प्रयत्न आदि की ओर से दृष्टि हटाकर देश के रक्षक बिना परिणाम की चिंता किये वीरतापूर्वक कट कर मरने लगे। वैदिक सकाम कर्म लुप्त होने लगा। एक आध्यात्मिक आंदोलन ने मेरी रीढ़ की हड्डी ही तोड़ दी।

'मैंने प्रतीक्षा की कि शायद कलियुग में मेरा कोई आश्रयदाता मिल सके, परन्तु खेद है कि कोई दिखाई ही नहीं देता। मैं यश, वैभव, सुखादि सेवकों को साथ लिए फिरती हूँ, फिर पुरुषार्थहीन कापुरुष का तो वरण ही कैसे कर सकती हूँ? जिन अश्वमेघ और राजसूयादि यज्ञों पर मंत्रमुग्ध हो मेरे कदम बढ़ा करते थे, वे यज्ञ तो अब केवल अध्ययन और स्मृति की बात बनकर रह गये हैं। अब मैं कहाँ जाऊँ? कौन मुझ अनाथ को सनाथ कर सकता है? क्या संसार में पुरुषार्थ का नामोनिशान ही उठ जाएगा? क्या महत्त्वाकाँक्षाएँ इस संसार से सदा के लिये विदा ले लेंगी? मैं अब भी किसी योग्य वर की प्रतीक्षा में हूँ। क्या मेरी पुकार कोई भी वीर नहीं सुन रहा है?'

एक वीर सीना फुला कर आगे बढ़ा,–'मैं तुम्हारी पुकार का उत्तर देता हूँ, मेरे पास आओ।'

और मैं विजय दुल्हिन–सी ठुमकती हुई उसके समीप जा बैठी। पाणिग्रहण हुआ, मांगलिक गीत गाये गये। दुल्हिन की प्रत्येक इच्छा को पूर्ण किया गया। उसके प्रत्येक कटाक्ष के साथ तलवारें चमकने लगीं। सैकड़ों और हजारों टुकड़ों में बंटा हुआ भारत उसकी चलाई हुई तलवारों की छाँह में एक होकर विश्राम करने लगा। जिस स्थान पर उसने कदम रखा पतिव्रता की भाँति विजय ने उसके प्रत्येक चरण को अपनी सदाबहार मुस्कराहट से चूम लिया। यह भारतभूमि संपूर्ण रूप से उस विजय की सौत बन गई। भारत का इतिहास विजय से ईर्ष्या करने लगा और उसने अपने पन्नों पर ऐसे किसी सम्राट की कहानी को चढ़ने ही नहीं दिया।

वह सम्राट समुद्रगुप्त भी एक क्षत्रिय था।

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

प्रकरण : नौ

मात्र युद्ध!

एक दिन की बात है -

उषा रानी अपने पतिदेव के स्वागत के लिये तैयारियाँ करने लगी। अपने अस्तव्यस्त तथा लाल, पीले और गुलाबी वस्त्रों को समेटती हुई वह गज-गति से मन-मानस के सरोवर में हंस की भाँति उतर रही थी। अकस्मात् असावधानी से आँचल की एक पल्लू सोते हुए सम्राट कुमारगुप्त की नींद से छेड़छाड़ करता हुआ पकड़ लिया गया।

रात्रि तो सम्राट की आँखों में ही विश्राम कर रही थी। हूणों के अत्याचार आये, संस्कृति के मूलोच्छेदन के लिये कृत-संकल्प थे, प्रजा में त्राहि त्राहि मच रही थी। अत: प्रात:काल ही उनके दमन के लिये अपनी चतुरंगिणी सेना सहित उन्हें प्रस्थान करना था। उषा की हल्की-सी पदचाप ने इसलिए निद्रा को सजग कर दिया। एकाध करवट के बाद शय्या त्याग कर सम्राट ने सेनापति को उचित आदेश दिये और स्वयं प्रस्थान की तैयारी में जुट गये।

एक दिन की बात है-

'नहीं स्कन्द! तुम अभी बहुत छोटे हो।'

'पिताजी! आयु की तराजू में क्षात्रधर्म नहीं तुलता, ऐसा गुरुदेव ने बताया था।'

'यह ठीक है पर हूण बड़े अत्याचारी हैं, उन्हें तुम्हारे जैसे निर्दोष पुष्प को निर्दयतापूर्वक मसलने में जरा भी दया नहीं आयेगी।'

'महाराज, मैंने सुना है कि राज्यलक्ष्मी का सुहाग दया की भीख से नहीं तलवारों के पुरुषार्थ से भरा जाता है। हूणों की दया से जीवित रहकर मैं धरती की माँग में सिन्दूर नहीं भर सकता। मुझे आज्ञा दीजिए पिताजी, मैं भी युद्ध में जाऊँगा।'

'बेटा, तुम बहुत छोटे हो। मौत से लड़ने के लिये तो हम जैसे बुड्ढों को ही जाने दो। वह तो हमारे लिये ही है।'

'तो फिर मैं भी उससे लड़ कर देखूं न। यदि मौत से लड़ने में आनन्द है तो एक पुत्र के नाते मैं आपसे उस आनन्द की भीख माँगता हूँ और यदि उसमें दु:ख है तो उस दु:ख में पुत्र के नाते अपना हाथ बंटा कर पितृ-ऋण को चुकाना चाहता हूँ। मैं आपका पुत्र हूँ। पिताजी! क्या मेरा इतना आग्रह भी स्वीकार न करोगे?'

और पिता कुमारगुप्त इस आग्रह को न टाल सके।

एक दिन की बात है-

एक छोटा सा अलबेला राजकुमार हृदयहीन हूणों के विरुद्ध लोमहर्षक युद्ध में योगियों-सी एकाग्रता से संलग्न हो गया। उसकी तलवार काल के कदमों-सी अनवरत रूप से चल रही थी और उधर हाथियों के कलेजे दहलने लगे, आकाश घायल होकर पृथ्वी की ओर झुका जा रहा था, दुर्दमनीय मौत अपनी जिन्दगी में शायद पहली ही बार कायर होकर भागने वालों का आश्रय ले रही थी और वह तैरता जा रहा था युद्ध क्षेत्र में-समस्त बाधा व्यवधानों को चूर-चूर कर किसी बाल कवि के फड़कते उद्‌गारों की भाँति।

फुर्सत ने आकर अपना परिचय दिया 'मैं षोडशी हूँ, सुरबाला हूँ, कोमलांगी हूँ, मेरा पाणिग्रहण करो।' उस छोटे से राजकुमार ने कहा-'जरा युद्ध करने दो; फुर्सत से आना, फिर तुमसे भी युद्ध करूंगा।'

राज्य-सुख आया-'मैं तेरा सखा बनूंगा। चलो क्षण भर आँखमिचौनी खेलें।' उस नर-पुंगव ने कहा था, 'आँखमिचौनी खेलने का मैं आदी नहीं हूँ; मैं युद्ध को खेल लूं, फिर ऐसा ही खेल तुमसे भी खेलूंगा।'

एक दिन की बात है, भगवान भास्कर ने संध्या के समय देखा शत्रु भाग गए थे और वह छोटा-सा नरसिंह युद्धभूमि में थककर वहीं पड़े किसी शव का सिरहाना देकर सो गया है। उन्होंने कहा, 'बेटा तुम्हारा युद्ध अकथनीय और अतुलनीय है पर तुम थक गए हो, आओ मेरी गोद में आज की रात विश्राम कर लेना?' पर उस लाजवाब का जवाब था,-'भगवान्!

आप भी दिन और रात चलते हुए विश्राम नहीं लेते, फिर मुझे क्या विश्राम दोगे। लेकिन कल मैं आपको भी विश्राम कराऊँगा। सुबह मैं ऐसा अनुपम युद्ध लडूंगा, ऐसा भीषण और प्रलयंकारी संहार करूंगा, ऐसा अनिर्वचनीय पुरुषार्थ दिखाऊँगा कि थोड़ी देर आप भी रुक कर देखने लग जायेंगे।'

बौद्ध धर्म आया अहिंसा और शान्ति का उपहार लेकर और कहा,- 'इसे स्वीकार करो।' तब उस कर्मयोगी ने उत्तर दिया, 'मेरा प्रत्युपहार युद्ध है, वह मैं तुम्हें दूंगा, लेकिन पहले यह हाथ आया युद्ध तो लड़ लेने दो।'

एक दिन की बात है बुद्धगुप्त उसका ही एक भाई उसी की राजगद्दी पर अवसर पाकर बैठ गया। लोगों ने कहा, 'अब तो युद्ध छोड़ो, अपने अधिकारों को प्राप्त करो।' तब उस कर्तव्यनिष्ठ योद्धा ने कहा था, 'मैं राजगद्दी के लिये युद्ध नहीं छोड़ सकता। यह जन्म तो संघर्ष के लिये ही है, किसी अन्य संघर्षहीन जन्म में राजगद्दी के लिये भी लडूंगा।'

अनन्त आकर ललकारने लगा, 'तुम सबसे युद्ध ही युद्ध की बातें करते हो, हिम्मत हो तो मुझसे लड़ लो।' और वह उस पर भी टूट पड़ा। अनन्त ने पैंतरे बदले, उछल-कूद की, पर वह हार गया और अन्त दे गया।

एक दिन की बात है, स्पेन तक विजय प्राप्त करने वाले, रोम और मिश्र में अपनी ध्वजा फरफराने वाले अजेय हूणों की समाधियों से स्कन्दगुप्त की समाधि ने पूछा, 'अनन्त से लड़कर अन्त में मुझे बनाया पर तुम्हारा श्मशान किसने बनाया?'

निश्वासों से भरा हूण-समाधियों का परवश उत्तर था-'हमारा हेतु और कारण स्कन्दगुप्त एक क्षत्रिय था।'

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

* * *

प्रकरण : दस

जय सोमनाथ!

'जय सोमनाथ!'

शनिवार, 8 जनवरी सन् 1026 की उषा काल के अन्तिम प्रहर में जब सूर्य अंगड़ाई लेकर अपने बिस्तर पर करवट बदल रहा था, तब मन्दिरों में घन-घन कर टंकोरे और हिन-हिनाती तुर्रहियाँ चीख रही थीं-'जय सोमनाथ!'

सूर्य ने कसूमल रंग की चादर उठाकर अपना मुँह बाहर निकाला तो उन्हें शत् शत् कण्ठों की गगन-भेदी ध्वनि सुनाई दी-'जय सोमनाथ!'

शत्रु के रक्त की प्यासी होकर तलवारें प्रभात काल में सहस्रों बिजलियाँ-सी कड़क रही थीं और प्रत्येक कड़क के साथ लोमहर्षक रणघोष हो रहा था-'जय सोमनाथ!'

तीरों के बादल छा गए और मानवता के निकलते हुए जनाजे को देखकर आकाश के बादल कलप-कलप कर आँसू बहा रहे थे। हवाएँ विलाप कर रही थीं-'जय सोमनाथ!'

प्रेम और शान्ति रूपी पुत्रों के अवसान पर धरती माता के गालों पर लाल रंग के आँसुओं की कल-कल कर धाराएँ बह रही थीं और हिचकियाँ सुबक रही थीं-'जय सोमनाथ!'

गरम-गरम रक्त के समुद्र में जीवन नौका की पतवारें छप-छप कर चल रही थीं और गिद्ध मांस नोचते हुए कह रहे थे-'जय सोमनाथ!'

पताकाएँ टेढ़ी-मेढ़ी होकर फरफरा रही थीं और उनसे व्याकुल होकर व्योम धरती का चुम्बन लेता हुआ बोला-'जय सोमनाथ!'

इतिहास में पन्नों पर अंकित होने वाले ऐसे असामान्य दृश्य को देखने के लिये सूर्यदेव अपने रथ पर हड़बड़ा कर सवार होते हुए अपनी प्रशंसा प्रगट करने लगे-धन्य है धरती के पुत्रों को-'जय सोमनाथ!'

लम्बे काल की प्रतीक्षा के बाद कालिका का खप्पर आज भरा जा रहा था और वह तृप्त होकर डकारें ले रही थी-'जय सोमनाथ!'

प्रलय के ताण्डव नृत्य की मुद्रा में स्वयं भगवान सोमनाथ भीमदेव के रूप में गरज रहे थे। उनके गम्भीर कंठस्रोत से सृष्टि को थरथराने वाली ध्वनि निकल रही थी-'जय सोमनाथ!'

भीमदेव की रक्त रंजित तलवार के प्रत्येक वार के साथ धरा धसक रही थी और धसकते हुए कराह रही थी-'जय सोमनाथ!'

श्मशान घाटों पर सोये हुए कई राख झड़का कर समाधियों से बाहर निकलते हुए नारा लगाने लगे-'जय सोमनाथ!'

क्रोधित तूफान में समुद्र की लहरों सी सरसराती हुई शत्रु सेना अपने भाग्य के किनारों से टकरा रही थी और उनकी प्रत्येक पछाड़ के साथ ध्वनि आ रही थी-'जय सोमनाथ!'

पुजारी के भेद और क्षत्रिय के दुर्भाग्य ने मंदिर के लोह कपाटों पर बल लगाया और वे टूटते हुए चरमराये-'जय सोमनाथ!'

विजय और भाग्य अपनी गठरियाँ संभाल कर भीमदेव से विदा लेने लगे-'जय सोमनाथ!'

नियति के क्रूर व्यंग्य पर मुस्करा कर होनहार से टक्कर लेने की सोच कर भीमदेव ने भी विदा का हाथ उठाया-'जय सोमनाथ!'

मृत्यु और पराजय ने काले वस्त्र धारण कर मंदिर में प्रवेश किया और भीमदेव से अभिवादन करने लगे-'जय सोमनाथ!'

असंख्य नरमुण्ड ओलों के समान बरस रहे थे और स्वर्ग के विमान उड़ने की तैयारी में शीघ्रता का संकेत कर रहे थे-'जय सोमनाथ!'

लेकिन भीमदेव तन्मय और एकाग्र होकर नरसंहार का योगाभ्यास कर रहा था। हठात् जीवन संध्या मृत्यु से अन्तिम विदा लेने लगी-'जय सोमनाथ!'

और

'जय सोमनाथ!'

भीमदेव का कटा हुआ मस्तक भगवान सोमनाथ के चरणों में गिर पड़ा। रक्त की धारा अभिषेक करने लगी-'जय सोमनाथ!'

इस नश्वर शरीर का यह तुच्छ मस्तक और मेरे रक्त के साथ मेरा आखिरी अरमान भी, हे कुल देवता! तुम्हें भेंट है।

'जय सोमनाथ!'

मंदिर की ईंट-ईंट बिखर गई। उसके सोने-चाँदी के अलंकार व रत्न लादे जा रहे थे। लदे हुए ऊँटों ने अरड़ाट की-'जय सोमनाथ!'

धर्म के नाम पर धर्म कचोटा गया, धर्म के नाम पर धरती की कोख सूनी हो गई, धर्म के नाम पर बलिदान को बलि चढ़ा दिया, यज्ञ की अन्तिम स्वाहा में पूर्णाहुति का मंत्र गूंजा-'जय सोमनाथ!'

गुर्जर देश के सूर्य ने फिर बिस्तर में घुसकर लाल चादर ओढ़ ली। मंदिर श्मशान बन चुका था और सियार चिल्ला रहे थे-'जय सोमनाथ!'

रात का सन्नाटा दबे पाँव घूम-घूम कर देख रहा था-संहार के वीर्य से उत्पन्न चिर शान्ति के एकछत्र साम्राज्य को-'कौन है सम्राट? कहाँ गया वह?' अन्धेरे ने पहचान कर कहा-'जय सोमनाथ!'

अर्द्ध रात्रि को गगन के पर्दे हटा कर स्वयं सोमदेव ने अपनी रजत आँखों से आश्चर्यवत् देखा अपने नाथ और उसके सेवकों को स्वर्ग में हिलमिल कर नृत्य करते हुए। भूत-प्रेत गण जय-जय की ध्वनि से ताल दे रहे थे-'जय सोमनाथ!'

पार्वती ने पूछा-'भगवान्! वह कौन था? आपके ही क्रोध की भृकुटि के समान-न मौत से डरता था, न तीर और तलवार से। न खून और संहार से डरता था, न प्रलय और पराजय से। रक्त की अन्तिम बूंद, जीवन के अन्तिम श्वास, यहाँ तक कि मृत्यु के बाद भी लड़ता हुआ बोल रहा था-'जय सोमनाथ!'

गणेशजी बीच में ही बोल उठे-'वह एक क्षत्रिय था।'-'जय सोमनाथ!'

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

✻ ✻ ✻

प्रकरण : ग्यारह

उत्तर भड़ किंवाड़

काक नदी की पतली धारा किनारों से विरक्त-सी होकर धीरे-धीरे सरक रही थी। आसमान ऊपर चुपचाप पहरा दे रहा था और नीचे लुद्रवा देश की धरती, जिसे आजकल जैसलमेर कहा जाता है, प्रभात काल में खूंटी तान कर सो रही थी। नदी के किनारे से कुछ दूरी पर लुद्रवे का प्राचीन दुर्ग गुमसुम-सा खड़ा रावल देवराज का नाम स्मरण कर रहा था। 'कैसा पराक्रमी वीर था! अकेला होकर जिसने बाप का वैर लिया। पंवारों की धार पर आक्रमण कर आया और यहाँ युक्ति, साहस और शौर्य से मुझ पर भी अधिकार कर लिया। साहसी अकेला भी हुआ तो क्या हुआ? हाँ! अकेला भी अथक परिश्रम, साहस और सत्यनिष्ठा से संसार को अपने वश में कर लेता है.....।'

उसका विचार-प्रवाह टूट गया। वृद्ध राजमाता रावल भोजदेव को पूछ रही है-

'बेटा गजनी के बादशाह की फौजें अब कितनी दूर होंगी?'

'यहाँ से कोस भर दूर मेढ़ों के माल में।'

'और तू चुपचाप बैठा है?'

'तो क्या करूँ? मैंने बादशाह को वायदा किया है कि उसके आक्रमण की खबर आबू नहीं पहुँचाऊँगा और बदले में बादशाह ने भी वायदा किया है कि वह लुद्रवे की धरती पर लूटमार अथवा आक्रमण नहीं करेगा।'

राजमाता पंवारजी अपने 15-16 वर्षीय इकलौते पुत्र को हतप्रभ-सी होकर एकटक देखने लगी, जैसे उसकी दृष्टि पूछ रही थी 'क्या तुम विजयराज लांजा के पुत्र हो? क्या तुमने मेरा दूध पिया है? क्या तुम्हीं ने इस छोटी अवस्था में पचास लड़ाईयाँ जीती हैं? नहीं! या तो सत्य झूठ हो गया है या फिर झूठ सत्य का अभिनय कर रहा था।'

परन्तु राजमाता की दृष्टि इतने प्रश्नों को टटोलने के बाद अपने पुत्र भोजदेव से लौटकर अपने वैधव्य पर आकर अटक गई। 'लुद्रवे का भाग्य पलट गया है अन्यथा मुझे वैधव्य क्यों देखना पड़ता? क्या मैं सती होने से इसीलिए रोकी गई कि इस पुत्र को प्रसव करूं। काश! आज वे होते।' सोचते-सोचते पंवारजी के दुर्भाग्य से हारे हुए साहस ने निराश होकर एक निश्वास डाल दिया।

'क्यों माँ, तुम चुप क्यों हो? क्या मेरी संधि तुम्हें पसन्द नहीं आई? मैंने लुद्रवे को लूट से बचा लिया, हजारों देशवासियों की जान बच गई।'

'आज तक तो बेटा, आन और बात के लिये जान देना पसन्द करना पड़ता था। तुम्हारे पिता को यह पसन्द था इसलिए मुझे भी पसन्द करना पड़ता था और अब वचन चले जायें पर प्राण नहीं जायें यह बात तुमने पसन्द की है इसलिए तुम्हारी माँ होने के कारण मुझे भी यह पसन्द करना पड़ेगा। हम स्त्रियों को तो कोई जहाँ रखे, खुश होकर रहना ही पड़ता है।'

आगे राजमाता कुछ कहना ही चाहती थीं किन्तु भोजदेव ने बाधा देकर पूछा-'किसकी बात और किसकी आन जा रही है। मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। कुछ बताओ तो सही माँ!'

'बेटा! जब तुम्हारे पिता रावलजी मेरा पाणिग्रहण करने आबू गए थे तब मेरी माँ ने उनके ललाट पर दही का तिलक लगाते कहा था-'जँवाईराजा, आप तो उत्तर के भड़ किंवाड़ भाटी रहना।' तब तुम्हारे पिता ने यह बात स्वीकार की थी। आज तुम्हारे पिता की चिता जलकर शान्त ही नहीं हुई कि उसी राख को कुचलता हुआ बादशाह उसी आबू पर आक्रमण करने जा रहा है और उत्तर का भड़-किंवाड़ चरमरा कर टूटा नहीं, प्राण बचाने की राजनीति में छला जाकर अपने आप खुल गया। इसी दरवाजे से निकलती हुई फौजें अब आबू पर आक्रमण करेंगी तब मेरी माँ सोचेगी कि मेरे जंवाई को 100 वर्ष तो पहले ही पहुँच गए पर मेरा छोटा-सा मासूम दोहिता भी इस विशाल सेना से युद्ध करता हुआ काम आया होगा वरना किसकी मजाल है जो भाटियों के रहते इस दिशा से चढ़कर आ जावे। परन्तु जब तुम्हारा विवाह होगा और आबू में निमंत्रण के पीले चावल पहुँचेंगे, तब उन्हें कितना आश्चर्य होगा कि हमारा दोहिता तो अभी तक जिन्दा है।'

'बस करो माँ! यह पहले ही कह दिया होता कि पिताजी ने ऐसा वचन दिया है। पर कोई बात नहीं, भोजदेव प्राण देकर भी अपनी भूल सुधारने की क्षमता रखता है। पिता का वचन मैं हर कीमत चुका कर पूरा करूंगा।'

'नहीं बेटा! तुम्हारे पिता ने तो मेरी माता को वचन दिया है परन्तु इस धरती से तुम्हारा जन्म हुआ है और तुम्हारा जन्म ही उसकी आन रखने का वचन है। इस नीलाकाश के नीचे तुम बड़े हुए हो और तुम्हारा बड़ा होना ही इस गगन में स्वतंत्र और स्वच्छ वायु बहाने का वचन है। तुमने इस सिंहासन पर बैठकर

राज्य-सुख और वैभव का भोग भोगा है और यह सिंहासन ही इस देश की आजादी का, इस देश की शान का, इस देश की स्त्रियों के सुहाग, सम्मान और सतीत्व की सुरक्षा का जीता जागता ज्वलंत वचन है। क्या तुम.......।'

'क्षमा करो माँ! मैं शर्मिन्दा हूँ। शत्रु समीप है। तूफानों से अड़ने के लिये मुझे स्वस्थ होने दो। मैं भोला हूँ-भूल गया पर इस जिन्दगी को विधाता की भूल नहीं बनाना चाहता।'

झन न न!

रावल ने घंटा बजाकर अपने चाचा जेसल को बुलाया।

'चाचाजी! समय कम है। रणक्षेत्र के जुए में जिन्दगी और सर्वस्व की बाजी लगानी ही पड़ेगी। आप बादशाह से मिल जाईये और मैं आक्रमण करता हूँ। कमजोर शत्रु पर अवसर पाकर आघात कर, हो सके तो लुद्रवे का पाट छीन लें अन्यथा बादशाह से मेरा तो बैर ले ही लेंगे।

जेसल ने इन्कार किया, युक्तियाँ भी दीं, किन्तु भतीजे की युक्ति, साहस और प्रत्युत्पन्न मति के सामने हथियार डाल दिये। इधर जेसल ने बादशाह को भोजदेव के आक्रमण का भेद दिया और उधर कुछ ही दूरी पर लुद्रवे का नक्कारा सुनाई दिया।

मुसलमानों ने देखा 15 वर्ष का एक छोटा-सा बालक बरसात की घटा की तरह चारों ओर छा गया है। मदमत्त और उन्मत्त-सा होकर वह तलवार चला रहा था और उसके आगे नरमुण्ड दौड़ रहे थे। सोई हुई धरती जाग उठी, काक नदी की सूखी हुई धारा सजल हो गई, गुम-सुम खड़े दुर्ग ने आँखें फाड़-फाड़ कर देखा-उमड़ता हुआ साकार यौवन अधखिले हुए अरमानों को मसलता हुआ जा रहा है। देवराज और विजयराज की आत्माओं ने अंगड़ाई लेकर उठते हुए देखा-इतिहास की धरती पर मिटते हुए उनके चरण चिह्न एक बार फिर उभर आए हैं और उनके मुँह से बरबस निकल पड़ा-वाह रे भोज, वाह!

दो घड़ी दिन चढ़ते-चढ़ते बदशाह की पन्द्रह हजार फौज में त्राहि-त्राहि मच गई। उस त्राहि-त्राहि के बीच रणक्षेत्र में भोजदेव का बिना सिर का शरीर लड़ते-लड़ते थक कर सो गया-देश का एक कर्तव्यनिष्ठ सतर्क प्रहरी सदा के लिये सो गया। भोजदेव सो गया, उसकी उठती हुई जवानी के उमड़ते हुए अरमान सो गए, उसकी वह शानदार जिन्दगी सो गई किन्तु आन नहीं सोई। वह अब भी जाग रही है।

जेसल ने भी कर्तव्य की शेष कृति को पूरा किया। बादशाह को धोखा हुआ। उसने दुतरफी और करारी मात खाई। आबू लूटने के उसके अरमान धूलि धूसरित हो गए। सजधज कर दुबारा तैयारी के साथ आकर जेसल से बदला लेने के लिये वह अपने देश लौट पड़ा और जेसल ने भी उसके स्वागत के लिये एक नये और सुदृढ़ दुर्ग को खड़ा कर दिया जिसका नाम दिया-जैसलमेर। इस दुर्ग को याद है कि इस पर और कई लोग चढ़कर आए हैं पर वह कभी लौटकर नहीं आया जिसे जेसल और भोजदेव ने हराया। आज भी यह दुर्ग खड़ा हुआ मन ही मन 'उत्तर भड़ किंवाड़ भाटी' के मंत्र का जाप कर रहा है। आज भी यह इस बात का साक्षी है कि जिन्हें आज देशद्रोही कहा जाता है, वे ही इस देश के कभी एकमात्र रक्षक थे। जिनसे आज बिना रक्त की बूंद बहाए ही राज्य, जागीर, भूमि और सर्वस्त्र छीना गया है, एकमात्र वे ही उनकी रक्षा के लिये खून ही नहीं, सर्वस्व तक को बहा देने वाले थे। जिन्हें आज शोषक, सामन्त या साँपों की औलाद कहा जाता है वही एक दिन जगत के पोषक, सेवक और रक्षक थे। जिन्हें आज अध्यापकों से बढ़कर नौकरी नहीं मिलती, जिनके पास सिर छिपाने के लिये अपनी कहलाने वाली दो बीघा जमीन नसीब नहीं होती, जिनके भाग्य आज के राजनीतिज्ञों की चापलूसी पर आधारित होकर कभी इधर और कभी उधर डोला करते हैं, वे एक दिन न केवल अपने भाग्य के स्वयं विधाता ही थे बल्कि इस देश के भी वही भाग्य विधाता थे। जिन्हें आज बेईमान, ठग और जालिम कहा जाता है वे भी एक दिन इंसान कहलाते थे। इस भूमि के स्वामित्व के लिये आज जिनके हृदय में अनुराग के समस्त स्रोत क्षुब्ध हो गए हैं वही एक दिन इस भूमि के लिये क्या नहीं करते थे।

लुद्रवे का दुर्ग मिट गया है जैसलमेर का दुर्ग जीर्ण हो गया है, यह धरती भी जीर्ण हो जाएगी पर वे कहानियाँ कभी जीर्ण नहीं होगी जिन्हें बनाने के लिये कौम के कुशल कारीगरों ने अपने खून का गारा बनाकर उन्हें लीपा है और वे कहानियाँ अब भी मुझे व्यंग्य करती हुई कहती है-एक तुम भी क्षत्रिय हो और एक वे भी क्षत्रिय थे।

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

* * *

प्रकरण : बारह

पाबू

भाद्रपद मास की बरसात-सी झूमती हुई एक बारात जा रही थी। उसकी बारात जिसने विवाह से पहले ही सूचना दे दी थी कि-'मेरा सिर तो बिका हुआ है, विधवा बनना है तो विवाह करना!' उसकी बारात जिसने प्रत्युत्तर दिया था,-'जिसके शरीर पर रहने वाला सिर उसका खुद का नहीं है, वह अमर है। उसकी पत्नी को विधवा नहीं बनना पड़ता। विधवा तो उसको बनना पड़ता है जो पति का साथ छोड़ देती है।'

ढोली दूहे गा रहा था-

धरती तु संभागणी, (थारै) इन्द्र जेहड़ौ भरतार।
पैरण लीला कांचुवा, ओढ़ण मेघ मलार।।
रंग आज आणन्द घणा, आज सुरंगी नेह।
सखी अमीणी गोठ में, दूधे बूठा मेह।।

गोरबंद और रमझोलों से झमक-झमक करते हुए ऊँटों और घोड़ों वाली वह बारात जा रही थी, सूखे मरुस्थल में सरसता की मन्दाकिनी प्रवाहित करती हुई, आनन्द और मंगल से ठिठोली करती हुई। परन्तु कौन जानता था कि उस सजी-सजाई बारात का वह अलबेला दूल्हा एक दिन जन-जन के हृदय का पूज्य देवता बनेगा?

कौन जानता था कि सेहरे तथा पाग की कलंगी और तुर्रों से सजे हुए उस दूल्हे के मन में, जरी गोटे से चमचमाते अचकन बागों में छिपे उसके हृदय में भी एक अरमान था-एक प्रतिज्ञा थी-एक जीवन था-एक तड़फन थी-एक आग थी-मेरा ज्ञानार्जन, मेरा विवाह, मेरा कुटुम्बपालन और मेरे जीवन के समस्त व्यापार एक आर्त की पुकार पर बलि होने के लिये है।

कौन जानता था कि उसे मोर के समान मीठी बोली वाली, हरिण के समान कातर नयनों वाली, वायुरहित स्थान के दीपक की लौ सी नासिका वाली, नन्दन वन के किसी चम्पा की लम्बी डाली जैसे हाथों वाली, चक्रव्यूह की लज्जा और सीता के समान शील वाली देव-बाला सी, उमरकोट के

बगीचों की अप्सरा सी, रूपमती दुल्हिन गठजोड़े के लिये मिलेगी?

कौन जानता था कि स्वर्ग के सौंदर्य को लज्जित करने वाला ऐसा आकर्षक विलास भी गोरक्षा की प्रतिज्ञा के समक्ष श्रीविहीन होकर कोने में प्रतीक्षा करता रह जायेगा?

कौन जानता था कि शहनाइयों की गमक, मांगलिक और मधुर आभूषणों की ठुमक, मनुहारों के उल्लास भरे वातावरण की झमक-झमक में जिस समय झीने घूंघट में छिपे अनुपम और उन्मत्त सौंदर्य के किनारों से हृदय-समुद्र की उत्ताल तरंगें पछाड़ खाने को प्रस्तुत होंगी, उस समय भाग्य का कोई क्रूर हरकारा भरे हुए प्यालों को ठुकरा कर, जीवन की मधुर हाला को आँगन में ही बिखेरने को तैयार हो जाएगा?

कौन जानता था कि चारणी भी चील का रूप धारण कर याद दिलाने आयेगी-'राही! विधाता ने तुम्हारे लिये जो मार्ग निश्चित किया था वह तो कोई दूसरा ही मार्ग है। इस लौकिक पुष्प में जिस सौंदर्य की खोज में भँवरे बनकर आए हो वह अलौकिक सौंदर्य यहाँ नहीं है। दूल्हे! तेरी बारात तो सजकर यहाँ आई है परन्तु तेरे विवाह की तैयारियाँ तो और कहाँ हो रही है। तू इस स्वागत से आत्मविभोर हो रहा है परन्तु इससे भी अधिक सुन्दर स्वागत की तैयारियों के लिये किसी अन्य स्थान पर दौड़ धूप हो रही है-देखो, गगन की गहराइयों में, स्वर्ग की अप्सराएँ तुम्हारे लिये वरमालाएँ लेकर खड़ी हैं!'

कौन जानता था कि विवाह के ढोल-धमाकों में भी कर्तव्य की क्षीण पुकार कोई सुन सकता है। मादकता के सुधबुध खोने वाले प्यालों को ओठों से लगाकर भी कोई मतवाला उन्हें फेंक सकता है, वरमाला के सुरम्य पुष्पों को भी सूंघने के पहले ही पैरों तले रौंद सकता है?

कौन जानता था कि मिलन का अनुपम अवसर उपस्थित होने पर ब्राह्मण कहता ही रहेगा-अभी तो तीन ही फेरे हुए हैं, चौथा बाकी है, उस समय गठजोड़े को छोड़कर सुहागरात की इन्द्रधनुषीय सतरंगी शय्या के लोभ को ठोकर मारकर, भोग-ऐश्वर्य के दुर्लभ स्वाति-नक्षत्र के समय युगों का प्यासा चातक पीउ पीउ करता हुआ, प्यास को ही पीकर, रागरंग के मादक अवसर पर निमंत्रण भरे इशारों की उपेक्षा कर, कंकण डोरों को बिना खोले ही कर्तव्य मार्ग का बटोही मुक्त हो जायेगा?

और वह चला गया–क्रोधित नारद की वीणा के तार की तरह झनझनाता हुआ, भागीरथ के हठ की तरह बल खाता हुआ, उत्तेजित भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा के समान कठोर होकर, पर कौन जानता था कि नारद की वीणा का वह क्रोधित तार स्वरों की उत्तेजना में ही टूट जायेगा, भागीरथ के बल खाते हठ को न झुकने की इतनी कीमत चुकानी पड़ेगी, भीष्म की प्रतिज्ञा को आलिंगन–बद्ध भोगों को बिना भोगे ही विदा करना पड़ेगा?

कौन जानता था कि चांदे और ढेमे के बीच वह शूरमा पाबू संसार में अपने पीछे लड़ने के इतिहास का अनिर्वचनीय उदाहरण रखकर, सितारों की ऊँचाइयों को नीचा दिखाने वाली केशर कालवी पर सुन्दर स्वागत का साक्षात्कार करने के लिये अनन्त की गहराइयों में सशरीर ही पहुँच जायेगा और तब दिशाएँ वियोगिनी बनकर ढूंढती ही रह जायेंगी, मानवता विधवा बनकर सिसकती ही रह जायेगी?

कौन जानता था कि जिसने अग्नि की पूरी परिक्रमाएँ ही साथ नहीं दी, जिसके हथलेवे का हाथ पकड़ने से पहले ही छोड़ दिया गया, जिसके महावर की लगी हुई मेंहदी ने सूखकर अपनी अरूणिमा का परिचय भी नहीं दिया, जिसकी आँखें किसी का रूप देखने से पहले लज्जा के कारण अपने घूंघट को ऊँचा तक नहीं उठा सकीं, वही दुल्हिन अपने नये ससुराल में उसी वर से दुबारा पाणिग्रहण कराने के लिये हाथ में नारियल लेकर अपने स्वर्गस्थ पति से चिरमिलन के लिये चल देगी?

वह चली गई–उमरकोट के राणा सूरजमल की कोख की जीती जागती ज्योति चली गई, परम ज्योति से मिलने के लिये; केशर कालवी चली गई, विस्मृति की कालिमा में खो जाने के लिये; लेकिन स्मृति बाकी रह गई; पाबू की अमर स्मृति जो आज भी कोलू के पास मरुस्थल के टीलों पर आत्मविभोर हो वीणा वादन कर रही है; राजस्थान का जनगण उसी स्मृति का कथाओं और गीतों की लोरों में, रावणहत्थों की धुन के साथ पड़ और पड़वारों में पूजन करता है। पड़ लगती है, रतजगे होते हैं, पाबू का यशगान होता है–वह भी एक क्षत्रिय था।

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

प्रकरण : तेरह

चुनौती

भाग्य और पुरुषार्थ में विवाद उठ खड़ा हुआ। उसने कहा मैं बड़ा और दूसरे ने कहा मैं बड़ा। विवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया। यश ने मध्यस्थता स्वीकार कर निर्णय देने का वचन दिया। दोनों को यश ने आज्ञा दी कि तुम मृत्यु लोक में जाओ। दोनों ने बाँहें तो चढ़ा ली पर पूछा–'महाराज! हम दोनों एक ही जगह जाना चाहते हैं पर जायें कहाँ? हमें तो ऐसा कोई दिखाई ही नहीं देता।' यश की आँखें संसार को ढूंढते–ढूंढते हमीर पर आकर ठहर गई।

वह हठ की चुनौती थी।

हमीर ने कहा–'स्वीकार है।'

एक मंगलमय पुण्य प्रभात में हठ के यहाँ शरणागत वत्सलता ने पुत्री के रूप में जन्म लिया। वह वैभव के मादक हिंडोली में झूलती, आङ्गन में घुटनों के बल गहकती, कटि किंकण के घुंघरूओं की रिमझिम के साथ बाल–सुलभ मुक्त हास्य के खजाने लुटाती एक दिन सयानी हो गई। स्वयंवर में पिता ने घोषणा की–'इस अनिंद्य सुन्दरी को पत्नी बनाने वाले को अपना सब कुछ देना पड़ता है। यही उसकी कीमत है।'

वह त्याग की चुनौती थी।

हमीर ने कहा–'स्वीकार है।'

त्याग की परीक्षा आई। सोलहों शृंगार से विभूषित, कुलीनता के परिधान धारण कर गंगा की गति से चलती हुई शरणागत वत्सलता सुहागरात्रि के कक्ष में हमीर के समक्ष उपस्थित हुई–

'नाथ! मैं आपकी शरण में हूँ परन्तु मेरे साथ मेरा सहोदर दुर्भाग्य भी बाहर खड़ा है। क्या फिर भी आप मुझे सनाथ करेंगे?'

वह भाग्य की चुनौती थी।

हमीर ने कहा–'स्वीकार है।'

अलाउद्दीन की फौज का घेरा लगा हुआ था। बीच में हमीर की अटल आन का परिचायक रणथम्भौर का दुर्ग सिर ऊँचा किये इस प्रकार खड़ा था जैसे प्रलय से पहले ताण्डव मुद्रा में भगवान शिव तीसरा नेत्र खोलने के समय की प्रतीक्षा कर रहे हों। मीरगभरू और मम्मूशा कह रहे थे-'इन अदने सिपाहियों के लिये इतना त्याग, राजन! हमारी शरण का मतलब जानते हो? हजारों वीरों की जीवन-कथाओं का उपसंहार, हजारों ललनाओं की अतृप्त आकांक्षाओं का बल-पूर्वक अपहरण, हजारों निर्दोष मानव-कलिकाओं को डालियों से तोड़कर, मसल कर आग में फेंक देना, इन रंगीले महलों के सुनहले यौवन पर अकाल मृत्यु के भीषण अवसाद को डालना।'

वह परिणामों की चुनौती थी।

हमीर ने कहा-'स्वीकार है।'

भोज्य सामग्री ने कहा-'मैं किले में नहीं रहना चाहती, मुझे विदा करो।'

वह भूखमरी की चुनौती थी।

हमीर ने कहा-'स्वीकार है।'

रणचण्डी ने कहा-'मैं राजपूतों और तुम्हारा बलिदान चाहती हूँ। इस चहकते हुए आबाद किले को बरबाद कर प्रलय का मरघट बनाना चाहती हूँ।'

वह मृत्यु की चुनौती थी।

हमीर ने कहा-'स्वीकार है।'

शाका ने आकर केसरिया वस्त्रों की भेंट दी और कहा-'मुझे पिछले कई वर्षों से बाँके सिपाहियों के साक्षात्कार का अवसर नहीं मिला। मैं जिन्दा रहूंगा तब तक पता नहीं वे भी रहेंगे या नहीं।'

वह शौर्य की चुनौती थी।

हमीर ने कहा-'स्वीकार है।'

हमीर के हाथों में लोहा बजने लगा। अन्तर की प्यास को हाथ पीने लगे। उसके पुरुषार्थ का पानी तलवार में चढ़ने लगा। खून की बाढ़ आई और उसमें अलाउद्दीन की सेना डूब गई। मानवता की सरल-हृदया शान्ति ने हमीर की तलवार पकड़ ली और फिर उसे छोड़कर चरणों में गिर पड़ी।

वह विजय की चुनौती थी।

हमीर ने कहा-'स्वीकार है।'

अप्रत्याशित विजय पर हमीर के सिपाही शत्रुसेना के झण्डे उछालते, घोड़े कुदाते रणथंभोर के किले की ओर जा रहे थे। दुर्भाग्य ने हाथ जोड़कर राह रोक ली,-'नृपश्रेष्ठ! मैं जन्म-जन्म का अभागा हूँ। जिस पर प्रसन्न होता हूँ उसका सब कुछ नष्ट हो जाता है। मैं जानता हूँ मेरी शुभकामनाओं का परिणाम क्या हुआ करता है परन्तु आप जैसे निस्वार्थी और परोपकारी क्षत्रिय के समक्ष सिर न झुकाना भी कृतघ्नता है। आप जैसे पुरुषार्थी मेरा सिर भी फोड़ सकते हैं, फिर भी मेरा अन्तःकरण आपकी प्रशंसा के लिये व्याकुल है। क्या मैं अपनी प्रशंसा प्रकट करूं?'

वह विधाता की चुनौती थी।

हमीर ने कहा-'स्वीकार है।'

शत्रु पक्ष के झण्डों को उछलते देखकर दुर्ग के प्रहरी ने युद्ध के परिणाम का अनुमान लगा लिया। बारूद की ढेरी में भगवान का नाम लेकर बत्ती लगा दी गई। आँख के एक झपके के साथ धरती का पेट फूट गया। चहचहाती हुई जवान जिन्दगी मनहूस मौत में बदल गई। हजारों वीराङ्गनाओं का अनूठा सौंदर्य जलकर विकराल कुरूपता से ऐंठ गया। मन्द-मन्द और मन्थर-मन्थर झोंकों द्वारा विलोड़ित पालनों में कोलाहल का अबोध शिशु क्षण भर में ही नीरवता का शव बन चुका था। गति ओर किलोलें करते खगवृन्द ने चहचहाना बन्द कर अवसाद में कुरलाना शुरू कर दिया। जिन्दगी की जुदाई में आकाश रोने लगा। सोती हुई पराजय मुँह से चादर हटाकर खड़ी हुई। कुमकुम का थाल लेकर हमीर के स्वागत के लिये द्वार पर आई-'प्रभु! मेरी सौत विजय को तो कोई भी स्वीकार कर सकता है परन्तु मेरे महलों में आप ही दीपक जलवा सकते हैं।'

वह साहस की चुनौती थी।

हमीर ने कहा-'स्वीकार है।'

हमीर ने देखा, कारवाँ गुजर चुका है और उसकी खेह भी मिटने को है, बगीचे मुरझा गए हैं और खुशबू भटक रही है। जीवन के अरमान मिट्टी में

मिलकर धूमिल पड़ गए हैं और उनकी मनोहर स्मृतियाँ किसी वैरागी की ठोकर की प्रतीक्षा कर रही हैं। मृत्यु ने आकर कहा–'नरश्रेष्ठ! अब तो मेरी ही गोदी तुम्हारे लिये खाली है।'

वह निर्भयता की चुनौती थी।

हमीर ने कहा–'स्वीकार है।'

महाकाल के मन्दिर में हमीर ने अपने ही हाथों अपना अनमोल मस्तक काटकर चढ़ा दिया। पुजारी का लौकिक जीवन समाप्त हो गया। परन्तु यशस्वी हठ द्वारा स्थापित अलौकिक प्रतिष्ठा ने इतिहास से पूछा–'क्या ऐसा कोई हुआ है?' फिर उसने लुटे हुए वर्तमान की गोदी में खेलते हुए भविष्य से भी पूछा–'क्या ऐसा भी कोई होगा?' प्रश्न अब भी जिज्ञासु है और उत्तर निरुत्तर। रणथम्भोर दुर्ग की लुटी हुई कहानी का सुहाग अभी तक लौटकर नहीं आया। उसका वैधव्य बीते हुए दिनों की याद में आँसू बहा रहा है।

यह शरणगत वत्सलता की चुनौती है।

परन्तु इस चुनौती को कौन स्वीकार करे? हमीर की आत्मा स्वर्ग पहुँच गई, फिर भी गवाक्षों में लौट कर आज भी कहती है–'स्वीकार है।'

यश पुरुषार्थ की तरफ हो गया। भाग्य का मुँह उतर गया। नई पीढ़ी आज भी पूछती है–

सिंह गमन सत्पुरुष वचन, कदली फलै इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार।

जिसके लिये यह दोहा कहा गया है वह रणथम्भौर का हठीला हमीर कौन था? तब अतीत के पन्ने फड़फड़ा कर उत्तर देते हैं,–'वह भी एक क्षत्रिय था।'

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

* * *

प्रकरण : चौदह

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ

साम्राज्य और स्वतंत्रता के बीच निर्णायक संग्राम चल रहा है और खानवा के युद्ध-क्षेत्र में घोड़े दौड़ रहे हैं।

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

'परन्तु मैं सो कैसे रहा हूँ, कहाँ हूँ मैं?'

'महाराणा आप कालपी ग्राम के शिविर में हैं।'

'नहीं, गलत है। यह कैसे हो सकता है? मेरे खानवा के युद्ध-क्षेत्र में फिर किसके घोड़े दौड़ रहे हैं।'

विष का प्रभाव अपनी सीमाएँ लांघ चुका था। महाराणा सांगा के अधूरे अरमान पश्चातापों की बेबसी पीकर बावले हो उठे थे। खानवा का युद्ध उनके भाग्य की अभागी भूल के रूप में उनकी अन्तिम स्मृति पर छा रहा था। परन्तु किसी को यह कहने का साहस नहीं हुआ कि खानवा के युद्ध क्षेत्र में दौड़ते हुए घोड़े शाश्वत थकान से हार कर उसी क्षेत्र में चिर विश्राम कर रहे हैं।

'बेचारी चारणी ने सच ही कहा था कि मेवाड़ का राज मुकुट इसे ही मिलेगा पर मेरे बड़े भाइयों को यह सहन नहीं हुआ। वे मुझ पर अकारण ही टूट पड़े। वे बड़े थे, मैं उन पर वार कैसे कर सकता था? मेरी एक आँख फूट गई परन्तु उस फूटी हुई आँख से मुझे देश के होनहार का कुटिल व्यंग दिखाई दे रहा था, इसलिए मैं उस भ्रातृप्रेम को काटना नहीं चाहता था। मैं एक्य और संगठन चाहता था। भारत को आजाद देखना चाहता था। मैंने भाग कर वह लड़ाई बन्द की। लोग मुझे कायर कहेंगे पर मुझे तनिक भी चिंता नहीं, क्योंकि मैंने उस संगठन को क्रियात्मक रूप से कर दिखाया जिसका कि मैं हिमायती था। इसीलिए तो खानवा के युद्धक्षेत्र में आज इतनी अधिक संख्या में घोड़े दौड़ रहे हैं।'

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

'महाराणा......................!'

'मेरी यह विजय कितनी महान् होगी क्योंकि इसे महान् बनाने में स्त्रियों ने अपने गहने बेचकर द्रव्य दान दिया। सभी रजवाड़ों के राजा ही नहीं, नगर-नगर,

गाँव-गाँव और झोंपड़ी-झोंपड़ी से चल फिर सकने वाले प्रत्येक राजपूत ने इसे महान् बनाने के लिये सहयोग दिया। आज यह फौज मेवाड़ की फौज नहीं, समस्त राजपूतों की फौज है, समूचे भारत की फौज है, विदेशी शासकों को भगाने के लिये स्वतंत्रता-प्रेमी देश-भक्तों की फौज है। देखो खानवा के युद्धक्षेत्र में इन देशभक्तों के घोड़े कितने उत्साह से दौड़ रहे हैं।'

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

'महाराणा! जरा शान्त रहिए!'

'हँ हँ! शान्त रहिए! क्या यह शान्ति का समय है? यह मेरी मातृ-भूमि, मेरी कौम और परम्परा के जीवन और मृत्यु का समय है। मेरे समस्त जीवन के प्रयासों के फलीभूत होने का तो समय ही अभी आया है। यह शान्ति की वेला नहीं क्रांति की वेला है। देख नहीं रहे हो, क्रांति के हरकारों की तरह खानवा के युद्ध-क्षेत्र में घोड़े दौड़ रहे हैं'-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

'इन बातों को बीते तो सात माह हो गए, महाराणा!'

'हाँ, हाँ, सात दिन ही तो हुए हैं। बाबर की घिग्गी बंध गई। उसके सन्धि प्रस्तावों को मैंने ठुकरा दिया। स्वतंत्रता की सन्धियाँ नहीं हुआ करती। गुलाम लोग अपनी संघर्षहीनता और कायरता के कारण सिद्धान्तों का समझौता करते हैं। सात ही दिन हुए-निराश होकर बाबर ने प्याले तोड़ डाले। उसने कुरान को हाथ में लेकर शपथ खाई है कि मैं कभी शराब नहीं पीऊँगा, पाँच वक्त नमाज पढूंगा और ईमान रखूंगा। वह शराब नहीं पियेगा, पाँच वक्त नमाज भी पढ़ेगा और ईमानदार भी बना रहेगा पर तब तक, जब तक खानवा के युद्ध क्षेत्र में हमारे घोड़े दौड़ते रहेंगे।'

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

'महाराणा! पानी पियेंगे?'

'पानी नहीं, खून पीना चाहता हूँ खून! बाबर की छाती का खून पीना चाहता हूँ। ला सकते हो क्या? मेरी प्यास न पानी से बुझने वाली है और न आँसुओं से। पृथ्वीराज की फोड़ी गई आँखों से बहता हुआ खून, तैमूर के अत्याचारों से बहता हुआ आर्य रक्त मूलधन सहित ब्याज चाहता है और मैंने इसी ब्याज को चुकाने के लिये बाबर पर उस समय आक्रमण किया था जब वह

इब्राहिम लोदी से लड़कर थक गया था। मैंने ठीक समय पर वार किया था। मेरे घोड़ों की टापें समय की पहचान जानती हैं। यदि भाग्य को वीरों की पहचान नहीं है तो इसमें मेरा क्या दोष? मेरे घोड़े तो भाग्य से ही जूझने के लिये खानवा के युद्ध-क्षेत्र में दौड़ रहे हैं'-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

'महाराणा! मेवाड़ के सरदार आए हैं, आपके चरणों का कुशल पूछने!'

'उन्हें कह दो लौटकर चित्तौड़ चले जाएँ और कुशल पूछें अपनी आयु और परिवार का। मुझ पर सारंगदेव का अहसान था। पृथ्वीराज और जगमाल ने मुझ पर आक्रमण किया था तब उस स्वामिभक्त साथी ने उसके वार को अपने ही सिर पर ले लिया। अपने पुत्र लिम्बा को उसने मेरे लिये खोया। शरीर पर 35 घाव लगे और अन्त में बाठरड़े के देवी मन्दिर में कपट से पृथ्वीराज के हाथों मारा गया। मेरी स्वामिभक्ति उसे कितनी महंगी पड़ी, पर मैं अभागा तो अपने हित चिन्तकों के अहसान भी नहीं उतार सका। इन कायर सरदारों ने मेरी आयु पर डाका डाल दिया। काश! मैं स्वामिभक्त सारंगदेव की समाधि पर दो आँसू ही बहा सकता! जाओ सरदारों! मेवाड़ के मगरों पर खरगोशों की शिकार खेलो। देखो, बचो, बचो! किसी घोड़े की फेंट में आ गए तो यहीं रह जाओगे। यहाँ घोड़े दौड़ रहे हैं-घोड़े! खानवा के युद्ध-क्षेत्र में दौड़ते जा रहे हैं'-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

'मेवाड़ जैसी पवित्र भूमि पर तुम्हारे जैसे कायर सरदारों के पाप को मैंने अपने शरीर पर लगे अस्सी घावों के रक्त से धोने की चेष्टा की है। परिस्थितियाँ चाहे किसी प्रकार की हों मुझे निराश नहीं कर सकतीं। मेरी एक आँख गई, एक हाथ कटा, एक पैर कटा, एक पैर टूटा परन्तु मेरा दिल नहीं टूटा। मैंने असम्भव को सम्भव कर दिया, सिंहों को साथ कर दिया, बिछड़े हुओं को मिलाकर अनेकों को एक कर दिया। परन्तु अफसोस......!'

इतना कहकर महाराणा सहसा कराहने लगे। बड़ा मार्मिक था उनका कराहना। आँखों में एक आँसू छलक कर बहने की तैयारी करने लगा।

'क्यों अन्नदाता! किसी घाव में पीड़ा हो रही है क्या? आपकी आँख का यह आँसू कहीं अपनी महानता.......।'

'मेरे शरीर पर तो ऐसी कोई जगह नहीं बची है जहाँ घाव नहीं हो। पर

आज एक नया घाव उभर रहा है। उस घाव में खून नहीं निकल रहा है, पानी निकल रहा है-पानी, और उस पानी से मेरे अरमानों की तस्वीर गल गल कर आँखों में आ रही है। वह देखो, विभीषण जा रहा है। तीस हजार घुड़सवारों के साथ बड़ी बेशर्मी से बाबर की ओर जा रहा है और खानवा के युद्ध-क्षेत्र में उसके दोशद्रोही घोड़े दौड़ रहे हैं'-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

'परन्तु उनकी टापें मेरे कलेजे पर पड़ रही हैं। मेरे प्रयासों से इतिहास बना था कि हम निःस्वार्थ देशभक्त हैं-भारत के स्वातन्त्र्य के लिये लड़ रहे हैं, परस्पर हम एक हैं, पर सरहदी के घोड़े की टापों से इस नये इतिहास के पृष्ठ कुचले जाकर फट रहे हैं। होनहार के आगे मेरे जीवन का समस्त पुरुषार्थ आज घुटने टेक रहा है। ओह! खानवा के युद्ध-क्षेत्र में देशद्रोही के घोड़े दौड़ रहे हैं'-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

महाराणा की आँख का उमड़ा हुआ आँसू हिम्मत हार कर आखिर ढुलक ही पड़ा।

'अन्नदाता! हिम्मत मत हारिये।'

महाराणा ने झट से विवशता को पौंछ डाला। बोले-'हाँ, ठीक कह रहे हो! मैं हिम्मत कैसे हारूँ। यह कठिन समय मेरी हिम्मत की परीक्षा का समय है। अब मुझे खुद को लड़ना है। लाओ मेरा घोड़ा। इस पर तो जीन भी नहीं है। परवाह नहीं। यह लो, सवार हो गया। अब खानवा के युद्ध-क्षेत्र में महाराणा संग्रामसिंह का घोड़ा दौड़ेगा।'

राणा सांगा शय्या त्याग कर एक घुड़सवार से झूमते दौड़ने लगे। लोगों ने दौड़कर बड़ी कठिनाई से उन्हें पकड़ लिया।

'महाराणा यह युद्ध-क्षेत्र नहीं है, यह तो आपका शिविर है।'

'युद्ध क्षेत्र! कहाँ युद्ध-क्षेत्र नहीं है? राजस्थान का हर मैदान युद्ध-क्षेत्र है, हर क्षत्रिय की आँख आज युद्ध-क्षेत्र है, मेरा प्रत्येक अरमान युद्ध-क्षेत्र है। मेरा समस्त जीवन युद्ध-क्षेत्र था और अब मेरी मृत्यु भी युद्ध क्षेत्र हो रही है, फिर इस शिविर को किसने युद्ध क्षेत्र नहीं होने दिया। छोड़ दो, मुझे जाने दो। कायरों की भाँति रोक कर मुझे कायर मत बनाओ। मुझे मेरा कर्तव्य पुकार रहा है क्योंकि खानवा के रणक्षेत्र में घोड़े दौड़ रहे हैं'-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

महाराणा का क्षीण शरीर परिचारकों के अवरोध से संघर्ष करता हुआ निराश होकर बेहोश हो गया। उन्हें पुनः शय्या पर लिटा दिया गया। राजवैद्य के लिये घोड़ा दौड़ाया गया।

'वर्षों तक पंवार कर्मचन्द ने मेरा पालन पोषण किया, दुखों में मेरा साथ दिया, मुझे अपना दामाद भी बनाया पर मैं तो उसका अहसान भी नहीं चुका सका। हसनखाँ मेवाती मुसलमान होकर भी मेरे लिये लड़ा। चन्द्रभान और माणकचंद चौहान दूर पूर्व से मेरा साथ देने आए। मारवाड़ के राव गंगा की ओर से रायमल, बीकानेर के राव जैतसी के पुत्र कल्याणमल, आम्बेर के राजा पृथ्वीराज और राजस्थान के किस रजवाड़े के राजा ने सहयोग नहीं दिया? सादड़ी के झाला अज्जा ने तो मेरा छत्र चंवर धारण कर मेरे लिये युद्ध किया। हे भगवान! मैं कितने लोगों के अहसानों का ऋण सिर पर लिये जा रहा हूँ। चंदेरी के मेदनीराय का अहसान चुकाने का अवसर आया था और साथ ही बाबर को भी छठी का दूध याद दिलाता पर अफसोस, मुझे मेरे सरदारों ने जहर दे दिया। मैंने जिन्हें अमृत पिलाया, मुझे क्या पता था कि मेरे अमृत के प्याले ही किसी दिन मेरी इस प्रकार की बेबस मौत के कारण होंगे। परन्तु मेरी आत्मा तो मेरे मरने के बाद भी खानवा के युद्ध-क्षेत्र में घोड़े दौड़ाती रहेगी'-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

'किसका इलाज करोगे वैद्यजी? विष का प्रभाव सम्भवतः आप हटा सकते हो। शरीर के लगे अस्सी घाव भी आपने ठीक किये हैं परन्तु मेरे दिल के घावों का उपचार करेंगे? उनमें तो अब मवाद पड़ गई है। वैद्यजी अब तो मेरे उपचार के लिये स्वयं यमराज को ही आना होगा। कृपा कर उन्हें शान्ति के साथ आने दो। मैं उनकी प्रतीक्षा में हूँ परन्तु जब तक वह न आयें तब तक दो क्षण उन घोड़ों की आवाज सुनने दो जो खानवा के रण-क्षेत्र में दौड़ रहे है'-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

'राणाजी! आपके कान आपको धोखा दे रहे हैं'।

'क्यों नहीं देंगे? मेरे सगे-सम्बन्धियों ने धोखा दिया, मेरे साथी ने धोखा दिया, राजपूत सिपाही ने धोखा दिया। और तो और मेरे सरदारों ने भी ऐसे कठिन समय में मुझे धोखा दिया, फिर यह कान मुझे क्यों नहीं धोखा देंगे? परन्तु मैंने आज तक किसी को धोखा नहीं दिया। मैंने न इतिहास को धोखा दिया और न कर्तव्य को। मैंने उन असंख्य साथियों को भी धोखा नहीं दिया

जिन्होंने मेरे कन्धे से अपना कन्धा मिलाकर मरने और जीने के भयानक जुए में अपने जीवन और सर्वस्व की बाजी लगा दी थी'।

'महाराणा! ईश्वर का नाम लीजिये।'

'ईश्वर का नाम! ह ह! विजयी वीर महाराणा कुम्भा का उत्तराधिकारी पराजय का मुँह देखकर ईश्वर का नाम लेगा? मैं हार कर ईश्वर का नाम नहीं लिया करता, जीत कर उसके चरणों में सिर झुकाता हूँ। हार कर ईश्वर के सामने जाने में मुझे लज्जा आती है। हार कर मैं स्वर्गस्थ विजयी पूर्वज महाराणा कुम्भा के समक्ष कैसे जाऊँगा? मैं लज्जित हूँ। जाने से पहले विजय-स्तम्भ तोड़ दो, मेवाड़ का इतिहास फाड़ दो, चित्तौड़गढ़ की ईंट-ईंट को बिखेर दो, राजपूतों का सारा वंश मिटा दो, तब मुझे मरने में कोई लज्जा नहीं आयेगी। फिर खानवा के रणक्षेत्र के घोड़े बड़ी शान से स्वर्ग की ओर मुड़ेंगे'-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

वैद्य ने गिड़गिड़ा कर कहा-'महाराणा! यह सब बातें छोड़ दीजिये, ईश्वर के नाम लेने का समय आ गया।'

'अच्छी बात है। हे प्रभु! हे ईश्वर इकलिंग! मुझे मोक्ष मत देना। वापिस इसी संसार में और इसी देश में भेजना। बाबर द्वारा दी गई पराजय मेरे हृदय को कचोट रही है, मैंने प्रतिज्ञा की है कि जब तक बाबर को नहीं जीतूंगा चित्तौड़ नहीं जाऊँगा। मैंने वेदना के सागर में निराशा की पतवारें लेकर इस जीवन के कुछ दिन रणथम्भोर में बिताए, केवल इस उम्मीद में कि तुम मेरी पुकार सुनोगे। आज मुझे मेरा चित्तौड़ बुला रहा है, रणभूमि बुला रही है, बाबर से बदला लेने की बात याद आ रही है और मैं जीवन में पहली बार कृपाकांक्षी बनकर तेरी देहली पर पड़ा हूँ। काश, तुम एक बार मुझे लौटा सकते! परन्तु मैं जानता हूँ तुम होनहार का बहाना करोगे, मेरे प्रारब्ध को दोष दोगे, काल और मर्यादा की बात कहोगे परन्तु यह कभी नहीं कहोगे-उठो साँगा! तुम्हें तुम्हारा कर्तव्य बुला रहा है। खानवा के युद्ध-क्षेत्र में घोड़ों की टापें तुम्हें याद कर रही हैं।'

'यह क्या! ओह! आपने तो मेरे लिये स्वर्ग से विमान भेजा है-नहीं नहीं, मैं जीवन भर घोड़े की पीठ पर चढ़ा हूँ। हाथ पैर टूटने के बाद भी पालकी में नहीं बैठा। मेरे लिये घोड़े भेजो, मैं स्वर्ग की गली और घाटियों में घोड़े दौड़ऊँगा-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

और

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

महाराणा रह गए और सांगा की आत्मा पवन के घोड़ों पर चढ़कर चली गई। आकाश मार्ग में अब भी टापें सुनाई दे रही हैं। चित्तौड़ दुर्ग अब भी महाराणा सांगा की प्रतीक्षा कर रहा है-'कब आयेंगे सांगा? बाबर को हराने की प्रतिज्ञा पूरी करने।' दूसरी ओर मेवाड़ से कोसों दूर सांगा की देह मातृभूमि के लिये तरसती तरसती चिता में जल-जल कर राख हो गई। तीस जनवरी, 1528 को इस बांके वीर की दर्दनाक कहानी लिखते-लिखते विधाता की कलम का कलेजा चूर-चूर हो गया। उससे साढ़े सात माह पहले फतहपुर सीकरी से दक्षिण पश्चिम में 10 मील दूर सन् 1527 की मार्च की 16 तारीख के दिन खानवा के युद्ध-क्षेत्र में दौड़ते-दौड़ते घोड़े थक गए परन्तु अब भी हल्दीघाटी में महाराणा प्रताप चढे हुए हैं और उनके घोड़े दौड़ रहे हैं।

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

हल्दीघाटी के घोड़े भी दौड़ते-दौड़ते थक गए पर महाराणा राजसिंह अब भी चढ़े हुए हैं और औरंगजेब से युद्ध करने के लिये उनके घोड़े दौड़ रहे हैं।

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

महाराणा राजसिंह के घोड़े भी थक गए पर महाराणा फतहसिंह अब भी चढ़े हुए हैं और दिल्ली से लौटते हुए उनके घोड़े दौड़ रहे हैं-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

महाराणा फतहसिंह के घोड़े भी थक गए पर कई कर्मवीर अब भी चढ़े हुए हैं और कर्मक्षेत्र में उनके भी घोड़े दौड़ रहे हैं-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

और यह बड़गड़ाहट अब भी याद दिला रही है कि किसी दिन खानवा के युद्ध-क्षेत्र में भी घोड़े दौड़े थे-

बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ बड़गड़ाँ।

और यह भी याद दिला रही है कि उन घोड़ों को दौड़ाने वाले मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह भी एक क्षत्रिय थे।

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

* * *

प्रकरण : पन्द्रह

सुख और स्वातंत्र्य

यमाराज बड़े ध्यान से सुन रहा था और चित्रगुप्त बहीखाते उलटता हुआ विवरण दे रहा था–

'महाराज!'

'मारवाड़ के सुप्रसिद्ध योद्धा राव मालदेव का यह छठा पुत्र था। इक्कीस वर्ष की अवस्था में 11 नवम्बर, 1662 को यह जोधपुर की राजगद्दी पर बैठा। आपने इसे केवल उन्नीस वर्ष दिये थे और उन उन्नीस वर्ष में इसने उन्नीस लड़ाईयाँ लड़ी।'

यमराज ने कहा–'कहे जाओ, मैं ध्यान से सुन रहा हूँ।'

'धर्मराज!'

'सोजत में इसका भाई राम शासन कर रहा था किन्तु उसकी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा जोधपुर पर राज्य करने की थी। स्वतंत्रता को गिरवी रखकर आत्मसम्मान को कुचलता हुआ आने वाली पीढ़ियों के नाम कालिख लगाकर वह अपने अरमानों के चिराग जलाना चाहता था। अपनी मातृभूमि के सम्मान के साथ बलात्कार करने के लिये उसने अकबर के सैन्य बल से नापाक सांठगांठ की परन्तु चन्द्रसेन की तलवारों ने उस गठबन्धन को तोड़कर सोजत के पतन की कहानी नाडोल तक रंग दी। सोजत दुर्ग का सिर इस महापुरुष के चरणों में भक्तिभाव से झुक गया।'

यमराज ने एक हुंकारा भरा और चित्रगुप्त बही खातों पर झुका हुआ सुनाये जा रहा था–

'घायल राम ने फुफकारना शुरू किया। नागौर के शाही हाकिम हुसैनकुली बेग से मिलकर उसने जोधपुर के किले को घेर लिया। उस दिन संसार भर की निर्लज्जता राम के कन्धों पर चढ़कर अट्टहास करने लगी। सोजत का परगना लेकर निर्लज्जता चुप हुई परन्तु राजा राम फिर भी चुप नहीं हुआ।'

चित्रगुप्त कहे जा रहा था।

'राम अकबर के दरबार में गया। पीढ़ियों की पाग को उसने मुगलिया

सल्तनत के आगे झुका कर बदले में अपनी ही मातृभूमि को विधवा बनाने की मांग की। शाही फौजों ने फिर जोधपुर को घेर लिया। महाराज! यह व्यक्ति जो आपके सामने खड़ा है न तो मौत के लिये मरना चाहता था और न जिन्दगी के लिये जीना। यह तो चाहता था मौत के लिये जीना और जिन्दगी के लिये मरना। जोधपुर मुगलों का हो गया और चन्द्रसेन के घोड़े भाद्राजून की ओर मुड़े।'

चित्रगुप्त ने अपने बहीखातों का एक और पृष्ठ पलटा और कहना शुरू किया–

'नागौर में अकबर ने इसे सन्धि के लिये बुलाया लेकिन घोड़ों को दगवाने की संधि चाहे नाममात्र की ही हो किन्तु थी तो अपमान जनक ही। इसने सम्मानपूर्ण जीवन के लिये जोधपुर के राजमहलों की मादक यादगारों, राजकीय ठाट-बाट के सुनहले स्वप्नों, उमड़ते और अलसाते यौवन के लिये भोग की आग्रहभरी मनुहारों को उसी क्षण लात मार अपनी संतान का सिर ऊँचा किया। अकबर की सेना ने भाद्राजून के किले को घेर लिया किन्तु त्यागी चन्द्रसेन ने चमकती हुई तलवारों के बीच पुरुषार्थी की भाँति मार्ग बनाकर सिवाणे में अपनी पताका गाड़ दी।'

चित्रगुप्त बिना सिर उठाए कहे जा रहा था–

'काणूजा में जाकर कर्मयोगी की भाँति इसने सैन्य-संग्रह किया। देशद्रोही और मुगल भक्त रतनसिंह इसके समक्ष नहीं झुका तो इसने उसके गाँव आसरलाई की ईंट-ईंट बिखेर दी। एक देशद्रोही की संघर्षहीनता का पाप इसी चन्द्रसेन के घोड़ों की टापों से कुचला जाकर हमेशा के लिये समाप्त हो गया। आसरलाई के अवशेष उसकी एक मात्र आत्मा है जो आज भी इस चन्द्रसेन जैसे देश भक्तों की खोज में भटक रही है।'

यमराज ने एक 'वाह' भरी और चित्रगुप्त ने उसकी ओर उड़ती निगाहों से देखकर पुन: कहना शुरू किया।

'ऐसे कठिन समय में जब इसके समक्ष भिनाय की जनता ने आकर पुकार की कि वे उसके शासक मादलिया के अत्याचारों से त्राहि-त्राहि कर रहे हैं तब 'क्षतात् त्रायते' के मंत्र को चरितार्थ करता हुआ यह शक्ति-व्यय की बिना चिंता किए भिनाय में आ धमका। मादलिया के यहाँ महफिल चल रही थी, शराब के दौर में मानवता निगली जा रही थी और अचानक इस चन्द्रसेन की तलवार चमक उठी। प्याले टूट गए, पैमाने लुढक गए, सुरा के साथ मादलिया के जुल्मों की कहानी भी सदा के लिये भूमि पर छितरा गई।'

चित्रगुप्त बिना विराम लिए कहे जा रहा था–

'किन्तु अकबर की निगाहों में स्वतंत्रता का हर प्रेमी खटकता रहता था। मातृभूमि से प्रेम करना उसकी नजरों में हिन्दुस्तान की बगावत थी और ऐसे ही इस बागी चन्द्रसेन को झुकाने के लिये उसने शाहकुली खाँ को प्रबल सेना के साथ सोजत की ओर भेजा। इसके भतीजे कल्ला ने ही फौज को रोक लिया और चन्द्रसेन आ धमका, कल्ला रायमलोत को शाबासी देने। दोनों सिरियारी के किले की ओर मुड़े।'

चित्रगुप्त ने गला साफ किया–

'उस दिन सिरियारी का किला भी शाही सेना के समक्ष नहीं झुका क्योंकि वहाँ कल्ला और चन्द्रसेन की तलवारों का पानी बरस रहा था। शाही सेना ने किले के चारों ओर आग लगा दी। किला जल गया और भूमि काली पड़ गई। आग बुझ गई, क्योंकि यह भूमि अब न झुकने की कीमत नहीं चुका सकती। उसकी कीमत चुकाने वाले बनजारों की बालदें लद गई।'

चित्रगुप्त ने अपने भर्राए गले को फिर साफ किया–

'बनजारे कोरणे के किले में उतरे और वहाँ भी घमासान मचा। तलवारों से तलवारें इस प्रकार टकरा रही थीं जैसे प्रलय की बिजलियाँ परस्पर टकराकर संहार के लिये उतावली हो रही हों। चन्द्रसेन और कल्ला लड़ते रहे–लड़ते रहे परन्तु भाग्य वीरता से सदैव डाह किया करता है। विजय युग–निर्माताओं से सदा आँखमिचौनी खेला करती है और उस आँखमिचौनी में चन्द्रसेन के तीन भतीजे केशवदास, पृथ्वीराज और महेशदास शत्रु के हाथ लगे परन्तु वीरता भी ममता के कदमों पर कब सिर झुकाया करती है।'

यमराज मनोयोग से सुन रहा था–

'उसी सिर को झुकाने के लिये शाही फौज सिवाणे की ओर गई क्योंकि चन्द्रसेन अब सिवाणे में आ गया था। एक वर्ष तक घेरा रहा। कभी–कभी रसद के लिये दो हाथ हो जाते थे पर अनमी का सिर नहीं झुका।'

चित्रगुप्त कहे जा रहा था–

'अजमेर से अकबर ने अपनी सेना की दुर्दशा का हाल सुना तो तैयबखाँ, खुर्रम अजमतखाँ आदि को दुगुनी फौज देकर भेजा। चन्द्रसेन ने रामपुरा की पहाड़ियों की शरण ली और शाही फौज अपने आपको विजयी समझकर लौट गई लेकिन अकबर ने बहुत फटकारा, 'सिवाणे आदि के किलों की मुझे जरूरत

नहीं है, मुझे जरूरत है चन्द्रसेन के सिर की जो या तो मेरे समक्ष झुक जाय अन्यथा टूट जाय। परन्तु अकबर का वह अरमान कभी पूरा नहीं हुआ। इस चन्द्रसेन का सिर न झुका और न टूटा।'

यमराज बड़े ध्यान से सुन रहा था और चित्रगुप्त बहीखाते उलटता हुआ कहे जा रहा था–

'अकबर ने फिर प्रयास किया। इस बार जलालखाँ और उसके साथ सैयद अहमद, हासिम और शिमाल खाँ भी थे। उन्होंने पहाड़ों की सब कन्दराएँ छान डालीं। बादलों में चाँद की तरह कभी चन्द्रसेन दिख जाता था और कभी लुप्त हो जाता था। जीवन के गहरे समुद्र में जीवट का यह खिलाड़ी कभी सांस लेने बाहर आता और फिर गहरा गोता लगा जाता था। शाही सैनिक बुरी तरह मार खा रहे थे, घोड़े थक गए थे और उनके सवार भी हैरान होकर जलालखाँ के साथ वापिस लौट पड़े।'

यमराज के मुँह से एक बार फिर निकला 'वाह!'

'सुराग लगने पर अलीकुली और बीकानेर के रामसिंह ने फिर जलालखाँ को बुलाया। युद्ध हुआ और चन्द्रसेन फिर पहाड़ों में अन्तर्ध्यान हो गया। रामगढ़ के किले को भी छान डाला पर चन्द्रसेन नहीं हाथ आया सो नहीं आया।'

चित्रगुप्त सुनाए जा रहा था–

'इतने में बगड़ी के ठाकुर देवीदास ने आकर ठीक समय में सहायता दी। मध्य रात्रि के समय जब चाँद अंधेरे के जंगल में भटक गया तो चन्द्रसेन ने उसी अंधेरे में जलालखाँ को ढूंढ़ निकाला। तलवार के एक ही वार से जलालखाँ के तीन जलालखाँ हो गये। ऐसी करारी मात पर जलालखाँ की कब्र अब भी सिसकियाँ भर रही हैं और उसकी आत्मा बादशाहों के बादशाह को अपनी पराजय का दर्दनाक विवरण सुनाने के लिये कयामत के दिन की प्रतीक्षा कर रही है।

चित्रगुप्त भावावेश में धाराप्रवाह रूप में कहे जा रहा था–

'चन्द्रसेन देवकोर के किले में चला गया परन्तु जलालखाँ की मौत शिमालखाँ के गाल पर करारी चपत थी और इसीलिए शाही सेना ने देवकोर के किले की ईंट–ईंट बिखेर दी परन्तु भीतर चन्द्रसेन नहीं केवल निराशा मिली। शिमालखाँ सिर पीट कर रह गया। यह चन्द्रसेन तो तूफान के समान शत्रु सेना पर आता था और घात करके पलक मारते ही पवन के समान उड़ जाता था। शत्रु विस्मयविमुग्ध थे।'

यमराज सुन रहा था और चित्रगुप्त कहे जा रहा था–

'पीपलोद के पहाड़ों में शाही सेना से फिर मुठभेड़ हो गई। चन्द्रसेन की तलवार से शत्रुओं की संख्या निरन्तर कम होती जा रही थी। सैकड़ों कठिनाइयाँ सहकर स्वतंत्रता का यह अद्वितीय प्रेमी अकबर के आगे झुकना राष्ट्रीय पाप समझता था। शाही सेना टूट गई, दिन टूट गये, पर्वत टूट गए, आशाओं के बांध टूट गए पर चन्द्रसेन नहीं टूटा।'

चित्रगुप्त ने चन्द्रसेन की ओर देखकर फिर कहना शुरू किया–

'एक दिन इसने सोचा–क्यों नहीं रक्षा के आक्रमणात्मक पहलू पर विचार किया जाय और इसके घोड़े अजमेर की ओर मुड़ गए। सरवाड़ के शाही थाने में एक दिन बड़ी अवेर कुहराम मच गया। 'भागो, भागो! जान बचाओ। या अल्लाह, चन्द्रसेन आ गया है।' मुल्लाओं की घिग्घी बंध गई, रोते हुए बच्चे चुप हो गए, दौड़ते हुए शत्रुओं की किसी की टोपी, किसी का जूता तो किसी का शस्त्र गिर जाता था पर वे जान बचाकर भागे जा रहे थे। चन्द्रसेन का ऐसा आतंक फैला कि उसका नाम सुनकर शाही कर्मचारियों की पिंडलियाँ कांपने लग जाती थी। अकबर ने पायंदा मोहमदखां को भेजा किन्तु चन्द्रसेन अजमेर लूटता हुआ अरावली की घाटियों में जा पहुँचा।'

चित्रगुप्त ने निश्वास खींचकर चन्द्रसेन की उन्नीसवीं लड़ाई का हाल कहना शुरू किया।

'धर्मराज! राव चन्द्रसेन की अन्तिम रणस्थली सोजत थी। शत्रु की वहाँ भी करारी मात हुई। चन्द्रसेन की लपलपाती तलवार के आगे सोजत ने आत्मसमर्पण कर दिया। उसके जीवन की पहली और अन्तिम लड़ाई सोजत में हुई।

'राजगद्दी के उन्नीस वर्ष पूरे हुए और आपने इसे यहाँ बुला लिया, सारन के पहाड़ों में सचियाय गाँव के निवासियों ने चन्द्रसेन के अन्तिम दर्शन किए और इसकी चिता के साथ पांच सतियों ने जलकर अपनी ज्योति को अखण्ड ज्योति में मिला दिया।

'धर्मराज! भगवान की अनेक अनोखी कृतियाँ इस संसार में स्वतंत्रता की पूजा करती आई हैं और करेंगी। संसार के हर कोने में देश–भक्त अपने देश की आजादी के लिये युद्ध करते आ रहे हैं और करेंगे भी, लेकिन इस चन्द्रसेन की भाँति उपेक्षित, निःसहाय, निर्धन और एकाकी होकर मातृभूमि के लिये उन्नीस वर्षों तक अंगारों पर सो कर राष्ट्रीय और जातीय गौरव पर जीवन देने वाले बहुत ही कम मिलेंगे।

इतना कहकर चित्रगुप्त चुप हो गया।

धर्मराज ने चन्द्रसेन की आत्मा को सम्बोधित किया–'तुम्हें तुम्हारी इच्छा का लोक दिया जाएगा। बोलो कौनसा लोक चाहते हो?'

चन्द्रसेन ने कहा,–'भगवन्! मुझे मृत्युलोक चाहिए।'

उत्तर को सुनकर यमराज और चित्रगुप्त दोनों ही चौंक पड़े। चन्द्रसेन ने कहा–'भगवन्! मेरी मातृभूमि अपने कल्याण के लिये कराह रही है। यवनों के अपवित्र शासन से मुक्त होकर जब तक मेरे देशबन्धु स्वतंत्रताकाश में स्वतंत्रता से सांस नहीं लेंगे तब तक मुझे सत्यलोक में भी शान्ति नहीं हो सकती। भारत की स्वतंत्रता मुझे पुकार रही है, मेरी पैतृक और परम्परा–प्राप्त भूमि के अपहृत अधिकार मुझे कोस रहे हैं, मेरे जीवन का अधूरा स्वप्न मुझे अपनी प्रतिज्ञा याद दिला रहा है, परकीय शासन मेरी शक्तियों को ललकार रहा है। यदि एक बार मुझे वापिस भेज दो तो मैं अपने मन की तो निकाल लूँ। सिर्फ पाँच साल के लिये ही भेज दो, यदि आपका अनुग्रह हो तो मैं मृत्युलोक..........।'

'धन्य है, चन्द्रसेन, धन्य! तुम तो देवताओं के देवता हो। अब मृत्युलोक में छोड़ा हुआ तुम्हारा अधूरा काम मेवाड़ में महाराणा प्रताप करेंगे। उसके बाद भी कई क्षत्रिय जन्म लेकर इस संघर्ष का ज्वलंत और जीता जागता इतिहास बनायेंगे। एक दिन आयेगा जब तुम्हारी संतान भारत–भूमि को देवभूमि बनाकर छोड़ेंगे। तुम निश्चिन्त होकर ब्रह्मलोक में आवो।'

इस आश्वासन से चन्द्रसेन को कुछ संतोष मिला और उस दिन से वे ब्रह्मलोक में बैठे हुए इतिहास की समस्त उथल–पुथल को देख रहे हैं।

यमराज की धर्मपत्नी ने कहा,–'नाथ आज इतनी देर से कैसे आए? और वह वीरता के साकार रूप–सा आपके न्यायालय में कौन खड़ा था जिसके लिये आपने आज अप्रत्याशित रूप से इतना अधिक समय लगाया है?'

यमराज ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया,–'वह भी एक क्षत्रिय था।'

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

* * *

प्रकरण : सोलह

स्वर्ग में स्वागत

आज स्वर्ग में बड़ी हलचल थी, इत्र का छिड़काव हो रहा था, मण्डपों को अलंकृत किया जा रहा था, गन्धर्व अपने-अपने तानपूरों के तार कस रहे थे, अप्सराएँ सोलहों श्रृंगार में व्यस्त थीं। मेनका सबसे प्रौढ़ थी किन्तु उसने तो आज ऐसी सज्जा बना ली थी जैसे उसी विश्वामित्र ऋषि को दुबारा छलने जा रही हो। उर्वशी को अपने सुकुमार सौंदर्य का भरोसा था फिर भी उसका प्रतिबिम्ब दर्पण से बार-बार पूछ रहा था-'कौन प्रतिस्पर्धा में विजयी होगा?' जब दर्पण मूक ही रहा तो उर्वशी भी मनोयोग से अम्लान पुष्पों की माला गूंथने में संलग्न को गई। तिलोत्तमा को अपने नृत्य पर भरोसा था इसलिए वह घुंघरुओं को ठीक कर रही थी। चारों ओर झमक-झमक और ता-तुन हो रहा था। इन्द्रदेव अपने सोम-रस के घड़ों को व्यवस्थित कर रहे थे। जीन कसा हुआ उच्चैश्रवा शायद किसी की सवारी के लिये उतावला होकर हिनहिना रहा था। ऐरावत हाथी पर शहनाइयाँ और नगारे बजाने के हौदे कसे जा रहे थे। इतने ही में ब्रह्मर्षि नारद खड़ाऊ पहने खट्ट-खट्ट करते हुए 'नारायण नारायण' बोलते आ धमके। उनका किसी ने अभिवादन तक नहीं किया। थोड़े अप्रतिभ होकर, फिर स्वस्थ होकर इन्द्र से पूछने लगे-

'सुरराज! आज तो बड़ी तैयारियाँ हो रही हैं। वह कौन भाग्यशाली है जिसके लिये इतनी व्यस्तता है, समूचे के समूचे स्वर्ग में।'

बिना नारदजी के सामने देखे देवराज इन्द्र ने अपने सोमघटों पर नजर दौड़ाते हुए कहा-

'तो क्या ऋषिराज! आपको कुछ भी मालूम नहीं?'

'नहीं तो!'

'आज यहाँ कल्ला रायमलोत आ रहा है।'

इतना कहकर इन्द्र ने नारद की ओर एक उड़ती हुई निगाह फेंकी।

'यह कल्ला रायमलोत कौन है?'

'उसका परिचय तो सरस्वती ही दे सकती है, पर हाँ! इस समय मृत्यु लोक में उसके हाथ उसका परिचय दे रहे हैं। स्वयं ही देख लीजिये न!'

नारदजी खटाक खटाक चलते हुए स्वर्ग के एक-एक वातायन को खोल नीचे मृत्यु-लोक को देखने लगे।

कल्ला रायमलोत लड़ रहा है जिसकी मूंछें भौंहों से भिड़ी हुई हैं। केसरिया वस्त्र धारण किये यंत्रवत् तलवार चला रहा है।

खच्च!

हाथी का झटका हो गया-

खच्च!

एक शत्रु के कंधे में तलवार घुसी और उसके घोड़े को पार करती हुई निकल गई-

खच्च!

एक मुगल की डाढ़ी को काटती हुई, रक्त पीते, पीठ फाड़ कर बाहर निकल गई।

नारदजी की अंगुली वीणा के एक तार से अनजाने ही उलझ गई-

'तुन-तुननन........।'

खच्च! खच्च!!

मुगलों के दो मुण्ड इस प्रकार गुड़क गए जैसे किसी संन्यासी की फटी हुई झोली से दो तुम्बे धरती पर गिर गए हों।

किले का भेदिया नाई मुगल सेनापति के साथ किले में घुस आया। और खच्च-

तलवार के एक ही वार से नाई को अमर-लोक मिल गया। सेनापति 'ला हौल विला कुव्वत' कहता हुआ भाग गया।

धड़ाधड़ मुगल सैनिकों ने किले में प्रवेश कर लिया और कल्ला को घेर कर लड़ने लगे।

खचा-खच, खचा-खच!

शत्रुओं के सिर ऐसे बिखर गए जैसे तूफान से खेजड़ी के खोखे।

नारदजी के चेहरे पर मुस्कराहट फैल गई।

जीती हुई बाजी हारते देख असंख्य शत्रु किले में घुस आए और अन्धाधुन्ध वार चलने लगे। और खच्च!

कल्ला का सिर धड़ से अलग हो गया।

सिर चला गया हवा में चक्कर काटता हुआ हाड़ी के पास जो पहले ही हाथ में नारियल लिये इसी की प्रतीक्षा कर रही थी।

चिता जल उठी और नारदजी ने मन ही मन मन्त्रार्द्ध गुन गुनाया–

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

सिर चला गया और धड़ दोनों हाथों से तलवारें चला रहा है। एक ओर कल्ला की तलवारें शत्रुओं के शोणित से अपनी प्यास बुझा रही है और दूसरी ओर चिता में जलकर रजपूती अपनी प्यास आग में बुझा रही है। एक ओर व्योम मार्ग पर दो पथिक अनन्त पथ की यात्रा पर बढ़ते आ रहे हैं हाथ में हाथ लिये, मुस्कराते हुए कभी–कभी मुड़ कर देखते हैं अपने ही बहे हुए रक्त को और अपनी ही जलती हुई चिता को। दूसरी ओर मृत्यु लोक में एक अमर कहानी खत्म हो रही है–सदा के लिये, सदा सर्वदा कि लिये।

स्वर्ग में गंधर्वों के तानपूरे सहसा झनझना उठे। अप्सराओं के घुंघरू तबलों की थप्पी के साथ एक साथ छनछना उठे। सोमरस के प्याले में प्रेम भरी मनुहारें चलने लगीं। शंखों और दिव्य शहनाइयों में परस्पर वार्तालाप होने लगे। देवताओं की स्वागत भरी निगाहें परस्पर ले दे रही थीं। नारदजी ने मुड़ कर देखा कल्ला तो खड़ा है, मरा नहीं और हाड़ी भी जली नहीं, सामने खड़ी है। नारदजी ने अपनी शंका का स्वयं ही समाधान किया–'ऐसी जिन्दगी भी क्या कभी जल या मर सकती है? मरती तो केवल छाया है–छाया।' आँखों को अर्धमुन्दी कर मग्न होकर नारद ने वीणा बजाना शुरू किया। अप्सराओं को ऐसे ओजपूर्ण, शूरवीर और तेजस्वी वर के गले में वरमाला डालने का साहस नहीं हो रहा था। फिर भी स्वर्ग सनाथ हो गया और धरती अनाथ क्योंकि धरा का पति कल्ला आज धरा को छोड़ स्वर्ग में चला आया था।

अकबर के दरबार तो बाद में भी लगे हैं, कई शहंशाहों के ठाठ बने और उजड़ गए पर भरे दरबारों में मूंछ पर हाथ देने का साहस किसी को नहीं हुआ क्योंकि ऐसा तो केवल कल्ला ही था जो कभी लौटकर नहीं आया।

मूंछों वाले तो आज भी बहुत हैं, लेकिन वह पानी कहाँ मूंछ का,

वह अलबेला बांकापन कहाँ जो सल्तनतों तक को चुनौती दे सके। मूंछों की तो मरोड़ ही कल्ला रायमलोत के साथ चली गई।

रूप की प्यास बुझाने के लिये अलाउद्दीन चित्तौड़ पर और औरंगजेब रूपनगर पर चढ़ आया था पर मौत की मजाक उड़ाकर अकबर की प्यास को अंगूठा दिखाने वाला कल्ला रायमलोत ही था। मौत की अब कौन मसखरी करे, कल्ला जो चला गया।

पृथ्वीराज ने तो बाद में भी कविताएँ की हैं, कई रसिक महाकवि भी बनगए, नई भाषाओं ने जन्म लिये और नई कल्पनाओं ने उड़ाने भरी हैं पर वह समाँ ही कहाँ, वह प्रवाह ही कहाँ, और सोष्ठव भी कहाँ? उन्हें तो पात्र ही नहीं मिलता क्योंकि कविताएँ धरती पर रह गईं और उनका पात्र कल्ला रायमलोत स्वर्ग जो चला गया।

युद्ध भी होंगे, वीर भी जन्मेंगे, धरती कभी निर्बीज नहीं हुई है। कई सिर कटने के बाद भी लड़े हैं, बोटी–बोटी कटने पर जूझते हुए दिखाई देंगे परन्तु हाथियों के चक्कर करने वाला और घोड़ों की टांगें पकड़कर फेंकने का दृश्य कभी नहीं देखा, कल्ला रायमलोत जो चला गया।

मरुधरा की सूखी और भूखी धरा वर्षो से प्रतीक्षा कर रही है, सिवाणे का उपेक्षित और उजड़ा हुआ किला अब भी दहाड़ मार रहा है, कोई हमारी भी प्यास बुझाओ, कोई हमें भी सनाथ करो, तब वर्षा की कंजूस फुहारें उदारता का स्वांग रचकर फुसलाने की चेष्टा करती हैं लेकिन इन पत्थरों पर लिखी हुई अमिट कविताओं की आग न कभी शान्त हुई और न कभी शान्त होगी। कल्ला रायमलोत लौट के आने का नहीं और धरा व धर्म की माँग भी पूरी होने की नहीं।

कल्ला रायमलोत के वियोग में यहाँ की वनस्पति सूख गई है, फिर भी उसकी आँखों में कातरता के जलप्रपात ढुलक रहे हैं। जिसकी तलवार से आसमान के सितारे टूट गए थे, मरने के बाद भी जिसकी भुजाएँ अपना कर्तव्य निभा रही थी, जिसकी यादगार आज भी कर्तव्य की याद दिला रही है, आन और शान की याद दिला रही है, कल्ला रायमलोत की याद दिला रही है, याद दिला रही है कि वह भी एक क्षत्रिय था।

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

प्रकरण : सत्रह

बदलते दृश्य

दृश्य पट पर कई चित्र आए, उभरे और बदलते गए। मैं तो इतना तल्लीन हो गया था कि याद ही नहीं रहे कौन कब आया और क्या कर चला गया। इन दृश्यों के बीच मैंने और भी कई दृश्य देखे थे। कभी महाराणा कुम्भा की विजय-यात्राएँ देख रहा था, गुजरात और मालवा को अलग-अलग और फिर सम्मिलित रूप से हारते देखा। कभी गो-वध को बन्द करने के लिये नागौर पर होने वाली चढ़ाई देखता रहा; फिर आग में मस्जिदों को जलते और तलवारों से मुसलमानों को कटते देखा। कभी पृथ्वीराज को जालौर और टोडा तक युद्धों के लिये उड़ने की गति से आक्रमण करते देख रहा था। जौहर की ज्वालाओं को देखा, केसरिया बानों को देखा, कसूमा पीते और गले लगते देखा, कभी महाराणा प्रताप को देखता रहा घास की रोटियाँ खाते, चेतक पर चढ़े वीरता के अलबेले सिपाही को पहाड़ों की घाटियों और उपत्यकाओं में इतिहास की अनमोल पंक्तियों को लिखते देखा। हल्दीघाटी में उसके भालों को शत्रुओं में घुसते और निकलते देखा। कभी ऊँटाला पर महाराणा अमरसिंह की सेना की विजय यात्रा में शक्तावतों और चूण्डावतों के हाथ देख रहा था। बन्द किले पर हाथी के हिचकने पर बल्लू शक्तावत के दरवाजे से चिपट कर हाथी से टक्कर दिलाने के ठाठ देखता रहा। रूपनगर की राजकुमारी के लिये मुँह धोने वाले औरंगजेब की आँख के काँटे महाराणा राजसिंह को देखा। हाँ भूल ही गया, मैंने कर्मवती को भी देखा था, गोरा और बादल को भी देखा था, मीरा और पद्मिनी को भी देखा था। रावत बाघसिंह को भी देखा और पन्ना को भी देखा और मेरे मुँह से बरबस निकल पड़ा-धन्य मेवाड़! धन्य!!

✻ ✻ ✻

मैंने सिरोही के राव अखैराज को देखा जिसने जालौर में गुजरात के सुल्तान की ओर से रहने वाले पालनपुर के बुजुर्ग मजाहिदखाँ को कैद किया था। राव दूदा को देखा जिसने अपने भाई की सन्तान के वैधानिक अधिकार के लिये अपने पुत्र तक को राज्य से वंचित कर दिया। राव मानसिंह को देखा जिसने एक ही दिन में बाईस मेवासों पर अधिकार किया था। भाग्य की उथल-पुथल में मैंने जीवट की झाँकी देखी। प्रबल पराक्रमी राव सुरताण को देखा जिसने अपने अथक प्रयत्नों से कई उथल-पुथल के बाद भी सिरोही को अपने हाथ से नहीं जाने दिया। छोटे से भूखण्ड में भी मैंने जीवन

संघर्ष की विपुल ममता देखी। दुर्भाग्य के बन्धनों में जकड़े हुए साहस की करामात देखी और मेरे मुँह से निकल पड़ा-वाह सिरोही! वाह!!

✻ ✻ ✻

मैंने तलवारें चलती देखीं। अपने पैतृक और परम्परागत राज्याधिकारों की पुनः प्राप्ति के लिये मैंने राव सीहा की तलवारें देखीं, राव चूंडा की तलवारें देखीं। पीपाड़ की 140 कुमारियों के अपहरण पर राव सूजा की तलवारें देखीं। मुहम्मद बेगड़ा द्वारा सिणली की कुमारियों के अपहरण पर जगमाल मालावत की तलवारें देखीं। कई गढ़ों को बनते और टूटते हुए देखा और उनके बीच राव मालदेव की तलवारें चमकती देखीं। मुट्ठी भर बाजरे के लिये ललचाई हुई दिल्ली की सल्तनत को डगमगाते जैता कूंपा की तलवारें देखीं। जालौर, सिवाणा, भाद्राजूण और पीपलोद के पास चन्द्रसेन और कल्ला की तलवारें देखीं। आगरे के किले में मैंने एक कटारी देखी थी और उसके बाद बल्लू चांपावत की उसी अमरसिंह के शव को लाने के लिये आगरे में तलवारें देखीं। एक ही नहीं दूसरी बार फिर उसी बल्लू चांपावत की तलवारें मैंने देबारी की घाटी में देखीं। कन्याकुमारी से लेकर काबुल तक मैंने जसवंतसिंह की तलवारें देखीं। दिल्ली में अजीतसिंह की रक्षा के लिये खून से लथपथ हुए वीर दुर्गादास की तलवारें देखीं जिस पर क्रोधित होकर औरंगजेब ने अपनी कुरान फेंक दी थी। मैंने सोनग चांपावत की तलवार देखी। हाँ हाँ-मैंने कान्हड़देव और सोनगरे वीरमदेव को भी देखा। कभी हड़बू को देखा तो कभी पाबू को। कभी रामदेवजी को देखा तो कभी धनजी भींवजी को और मेरे मुँह से निकल पड़ा-धन्य मरुधरा! धन्य!!

✻ ✻ ✻

मैंने भारत की उत्तर दिशा के किवाड़ों को देखा जो पहली बार गजनी के किले में लगाये गये। फिर स्यालकोट और भटनेर में लगाए गए। फिर केहरोर और तन्नोट गढ़ में लगाये गये। फिर देरावर और भटिंडा में लगाये गये। फिर लुद्रवा और अन्त में जैसलमेर में लगाये गये। मैंने उन किवाड़ों को देखा, उनके तालों को देखा, अर्गला और शूलों को देखा। पराक्रमी विजयराज चूंडाला को देखा, साहसी देवराज को देखा, भोज और जेसल को देखा। मूलराज और रतनसी के चरण कदमों को बालू रेत पर उभरते देखा। जैसलमेर के किले में मूलराज और रतनसी को केसरिया बाना पहने देखा, जौहर की ज्वालाओं को देखा। ज्योंही वे बुझने लगी दूदा और तिलोकसी ने फिर प्रज्वलित की। तीसरी बार लूणकरण ने उसी अग्नि को अतःकरण में समेट कर तीसरा शाका किया। बारह-बारह वर्षों तक चलने वाले संसार के अद्वितीय घेरों को देखा।

यमराज से युद्ध करने के लिये वृद्ध चाचकदेव की रणयात्रा देखी। मैंने महारावल घड़सी को देखा। किले को उजड़ते और आबाद होते देखा। सूखी भूमि में नरनाहरों के पुरुषार्थ के पानी को लहराते देखा। मैंने सतियों को देखा, मानिनी ऊमादे भटियाणी को देखा जिसने जीवनपर्यन्त पतिमुख न देखकर अन्त में पतिव्रत धर्म के लिये पति के शव के साथ अग्नि प्रवेश किया। मैंने महारावल अमरसिंह को रोहड़ी के पास लोमहर्षक युद्ध करते देखा और उसी गाँव के पास सतियों की पहाड़ी देखी जिस पर अब भी बुझी हुई ज्वाला धधक रही है और मेरे मुँह से बरबस निकल पड़ा-वाह जैसलमेर! वाह!!

* * *

एक दिन मैंने काका-भतीजा की सलाह पर एक ताना सुना और देखा कि उस ताने पर पुरुषार्थ अंगडाई लेकर उठ खड़ा हुआ। मैंने बीदा को युक्ति से छापर गढ़ लेते देखा। केवल तीन सौ सवारों के साथ काँधल को विजय का आह्वान करते देखा। मैंने रामसिंह और उसके सामने झुकते हुए यवन-शासित भटनेर के किले को देखा। शाही सेना के समक्ष मैंने दलपतसिंह का वीरतपूर्ण संग्राम देखा। अपने भाई का बदला लेने के लिय मैंने पद्मसिंह की तलवार को म्यान से बाहर निकलते और वापिस म्यान में जाते देखा। मैंने पत्थर के खंभे सहित हत्यारे यवन के चार टुकड़े देखे। बीजापुर के युद्ध में मैंने उसी पद्मसिंह और उसके भाई केशरीसिंह को बिना सिर लड़ते देखा। मैंने करणसिंह को बादशाही बेड़ा तोड़ते देखा। मैंने महाराज गजसिंह की तलवार को भावलपुर पर बरसते देखा और अनूपगढ़ के किले को उसके चरणों पर लौटते देखा। मैंने सूरतसिंह की भावलपुर पर चलती हुई तलवार को देखा। बालू रेत पर वीरता की फुलवारी खिलते देखी, सुनसान जंगलधरा पर पौरुष के लेख लिखे जाते देखे। मैंने पृथ्वीराज और उनकी 'बेली क्रिसन रुकमणी री' देखी। मथुरा के विश्राम-घाट पर उस कवि की अन्तिम पंक्ति उनकी समाधि को देखा। मैंने भागीरथ को बालू रेत में गंगनहर लाते देखा और मुँह से निकल पड़ा धन्य बीकाण! धन्य!!

* * *

मैंने मोकल के पुत्र शेखा को देखा जिसके बल-विक्रम से नये राज्य की नींव लग रही थी। केवल बीस सवारों के साथ मैंने रायसल दरबारी को देखा जिसने अकथनीय पराक्रम से शत्रु सेनापति का सिर काट डाला और मंत्री देवीदास के इस कथन की सिद्धि प्राप्त की कि 'पिता की सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त करने की अपेक्षा अपने ही बल व पराक्रम से सौभाग्य का उपार्जन मनुष्य का कर्तव्य है-यही जगदीश्वर का अनुग्रह है, उसी जगदीश्वर का अनुग्रह मैंने रायसल के पौत्र द्वारकादास पर देखा

जिसके सिंह से युद्ध के लिये उद्यत होने पर लड़ने की अपेक्षा वही शेर उनके तलवे चाटने लगा। मैंने भोजराज के वंशज नव-विवाहित सुजानसिंह को खंडेला के मंदिर की रक्षा करते देखा। उसे यौवन के अधूरे अरमानों के साथ अकेले ही सैकड़ों यवनों को मसलते देखा। धरा और धर्म की माँग पर प्राणोत्सर्ग के कर्तव्य का इतिहास में अमूल्य पृष्ठ जुड़ते देखा। वे कैसी माताएँ होंगी जिन्होंने इस प्रकार के नर-रत्नों को जन्म दिया है। मैंने केशरीसिंह को देखा जिसने सैयद अब्दुल्ला द्वारा भेजी गई शाही सेना का मुकाबला करने के लिये समस्त शेखावाटी को एक सूत्र में बांध दिया और जब वह सूत्र टूटने लगा तो युद्ध से भागने की सलाह को अस्वीकार करते हुए कहा था कि ऐसा कलंक मैं अपने ऊपर कभी नहीं लगाना चाहता जिसे मेरी आने वाली सौ पीढ़ियाँ भी धो नहीं सकती। उसी केशरीसिंह को अन्त में मेदिनी माता को अपने ही रक्त, माँस व मिट्टी से पिंडदान करते देखा। मैंने अनेक बार खंडेला को उठते, गिरते लड़खड़ाते और लड़ते देखा। शार्दूलसिंह जैसे जीवट के खिलाड़ियों को देखा, खेल के मैदानों को देखा, खेलों को देखा और छोटी-छोटी बातों में जीवन की महानताओं को गोते लगाते देखा और मेरे मुँह से बरबस निकल पड़ा वाह शेखावाटी! वाह!!

* * *

पहाड़ियों के बीच घिरे हुए आम्बेर दुर्ग को मैंने देखा। उस दुर्ग के प्रतापी और यशस्वी सिपहसालारों को देखा। उन बहादुरों और सेनापतियों को देखा जिन्होंने समुद्र में अपना खांडा धोया और काबुल तक हदबन्दी की। मैंने मिर्जा राजा जयसिंह को देखा जिसने शिवाजी जैसे प्रबल योद्धा को भी वश में कर लिया। जिसकी तलवार के लोहे का दबदबा आगरे से सुदूर दक्षिण तक फैला हुआ था। जिसके आगे बीजापुर और गोलकुण्डा ने सिर झुका दिया। मैंने जयपुर जैसे शहर को बसाने वाले राजा सवाई जयसिंह को देखा। उसकी कला, विद्वत्ता और सुशासन को देखा। समस्त राजस्थान को एक सूत्र में लाने की उनकी राजनीतिज्ञता देखी। उनको दिल्ली के सम्राट से लोहा लेते देखा और बादशाह को अपनी कब्र खोदने के लिये मजबूर करते देखा। मैंने उणियारा के रावराजा को देखा जिसने हारी हुई सांभर की लड़ाई को केवल 500 कुत्तों से जीत लिया। वह दृश्य देखकर तो मैंने दस बार ताली बजा डाली। मैंने टोडा को भी देखा। सुरताण हरराजोत की कन्या तारादेवी को घोड़े पर चढ़े, गये हुए राज्य को तलवार के बल वापिस लेते देखा। राव जगन्नाथसिंह और कुंवर कल्याणसिंह को शाका करते देखा। लावा की तलवारें देखीं, अलवर की हुंकारें देखीं और मैं कह उठा-धन्य आम्बेर! धन्य!!

* * *

मैंने किले देखे। विजयपाल को सन् 1040 में बयाना का किला बनाते देखा जिसमें उसने गजनी के अबुबक्र बुखारी का तीखी तलवारों से स्वागत किया था। मैंने परम भट्टारक महाराजाधिराज तवनपाल को सन् 1158 में तवनगढ़ बनाते और धर्मपाल को धोलपुर का किला बनाते देखा। मैंने कुंवरपाल से कुंवरगढ़ और अर्जुन पाल से गढ़कोट का किला बनते देखा। उसी अर्जुनपाल से युद्ध में मण्डरायल के मियाँ मक्खन को जान बचाकर भागते देखा। सन् 1348 में करौली शहर को बनते देखा। पूर्वजों की खोई हुई भूमि को विदेशी शासकों से मुक्त होते देखा। मैंने पृथ्वीराज को देखा जिसने ग्वालियर तक अपनी धाक जमाई थी। चारवानी के अफगानों को तवनगढ़ पर आक्रमण करते देखा और पृथ्वीपाल के हाथों तोड़े गए एक बाँध से अफगान सेना को डूबते और घिघियाते देखा। रजोगुणीय सरोवर में उत्पन्न सतोगुणीय कमलपुष्प महाराजा चन्द्रपाल को योगाभ्यास और अध्यवसाय करते देखा। मैंने दौलताबाद के किले को फतह करते हुए महाराजा गोपालदास को देखा और उसी के हाथों सन् 1566 में आगरे का किला बनते देखा। मैंने एक और गोपालदास को देखा जिसके प्रबल पराक्रम का लोहा दिल्ली का लाल किला भी मानता था। मैंने अहमदशाह अब्दाली को सन् 1757 में दिल्ली पर तीसरा आक्रमण कर मथुरा के मंदिरों को नष्ट करते देखा; तब मैंने उसी गोपालदास को मन्दिरों की रक्षा के लिये युद्ध द्वार से स्वर्ग जाते देखा। मैंने तुरसमपाल की तलवारों से कुबारी नदी का पानी लाल होते देखा। मैंने माणकपाल द्वारा करौली के आक्रामक रोड़जी सिंधिया को मरते और उसकी सेना को भागते देखा। मैंने मदनपाल के सुशासन को देखा और भंवरपाल को शेरों से खेल खेलते देखा और मेरे मुँह से निकल पड़ा-वाह करौली! वाह!!

✻ ✻ ✻

अकेले देवा हाड़ा को देखा जिसने अपने भुज-बल और युक्ति से बूंदी पर आधिपत्य किया। बांके सूरजमल हाड़ा को कर्तव्य के लिये मरते-मारते देखा। उस राव सुर्जन की स्वामिभक्ति को देखा जिसने रणथम्भोर के किले पर अकबर की महती सेना से 14 वर्ष तक सामना किया परन्तु स्वामी की दुहाई देने और मेवाड़ पर आक्रमण न करने की शर्त को नहीं छोड़ा। मैंने रावराजा बुद्धिसिंह को विपत्ति के कठिन क्षणों में राज्य-भ्रष्ट होते देखा परन्तु उनके पुत्र रावराजा उदयसिंह को देखा जिसने दुर्भाग्य से लोहा लेने के लिये होनहार के छक्के छुड़ा दिये। मैंने रावराजा छत्रसाल हाड़ा को देखा जिसने धोलपुर बाड़ी पर चम्बल के किनारे दाराशिकोह के विरुद्ध औरंगजेब के नाक में दम कर दिया था। मैंने जालमसिंह हाड़ा को देखा जिसकी बहादुरी और राजनीतिज्ञता

की आज भी भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही है। मैंने कोटा को देखा और मेरे मुँह से निकल पड़ा धन्य बून्दी! धन्य!!

✻ ✻ ✻

शाहपुरा के संस्थापक सुजानसिंह को मैंने कन्दहार में पठानों का खून बहाते देखा। मुगलिया सल्तनत को खत्म करने के लिये उसी सुजानसिंह को जसवन्तसिंह के साथ फतेहबाद में औरंगजेब से लड़कर अपना जीवन का अन्तिम खून पांच पुत्रों सहित बहाते देखा। मैंने बीजापुर में दौलतसिंह के शरीर पर लगे, एक बरछी, 15 तीरों और चार तलवारों के घावों से खून बहते देखा। मैंने भारतसिंह को गोलकुंडा के वसन्तगढ किले में शत्रुओं का खून बहाते देखा। उसी भारतसिंह को महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के साथ मेवाती रणबाजखां की सेना का खून बहाते देखा। मैंने उम्मेदसिंह को देखा जिसने हर निर्बल पक्ष का समर्थन कर सबल आतताई का खून बहाया। क्षिप्रा के तीर पर मैंने उम्मेदसिंह का अद्‌भुत और अपूर्व पराक्रम देखा जिसने महाराणा की सेना के साथ सिंधिया की सेना से इतना अभूतपूर्व और लोमहर्षक युद्ध किया कि बहते हुए खून से क्षिप्रा नदी का पानी समुद्रपर्यन्त लाल हो गया। मैंने पारोली के पास शाहपुरा की स्वतंत्रता के लिये रणसिंह को मरहठों का खून बहाते देखा। मैंने राजाधिराज अमरसिंह को प्रजापालन करते गोगूंदा के पास डाकुओं का खून बहाते देखा। जब खून बहने का इतिहास बन्द हुआ तो आर्य धर्म की प्रतिष्ठा के लिये बदले हुए खून को शुद्ध करते देखा। यज्ञों और वेदमंत्रों का पुनरुद्धार होते देखा और मेरे मुँह से निकल पड़ा वाह शाहपुरा! वाह!!

✻ ✻ ✻

मैंने महारावत सूरजमल का जीता जागता स्मारक प्रतापगढ़ राज्य देखा। चित्तौड़गढ़ के पाण्डलपोल पर मैंने महारावत बाघसिंह का स्मारक देखा जो निर्वासित होकर भी मातृभूमि पर विपत्ति के समय उसकी सहायता के लिये दौड़ा आया। उसी स्मारक के पास गुजरात के कृतघ्न सुल्तान बहादुरशाह की सेना के अनेक सिपाहियों की लाशों के ढेर देखे। हल्दीघाटी में महाराणा की ओर से कांधल को लड़ते देखा और वहीं कहीं पत्थरों में सोये हुए उसके स्मारक को देखा। पास ही उसी के भतीजे किशनदास के स्मारक के भावनाओं के भग्नावशेष देखे। मैंने जीरण के तालाब पर महारावत भानुसिंह का स्मारक देखा जिसने चीताखेड़ा की लड़ाई में मियां मक्खन को यमलोक पहुँचाया था। उदयपुर के चंपाबाग के बाहर मैंने महारावत जसवंतसिंह का और उसके पुत्र महासिंह का स्मारक देखा। मैंने सालमसिंह को देखा जिसने तुकोजीराव

होल्कर और बाद में मल्हारराव द्वितीय के प्रतापगढ़ के तीन-तीन मास के घेरे विफल कर दिये। मैंने पिंडारियों और पेशवाओं के प्रतापगढ़ पर आक्रमण देखे। थोड़े होकर भी स्वातन्त्र्य के लिये उत्सर्ग होने वाले अनेक वीरों के स्मारक देखे और मेरे मुँह से निकल पड़ा धन्य प्रतापगढ़! धन्य!!

✻ ✻ ✻

मैंने घोड़े देखे। सामन्तसिंह के घोड़े देखे जिसने गुजरात तक अपनी सीमाएँ बढ़ा कर अजयपाल सोलंकी को परास्त किया। उन्हीं घोड़ों से मैंने बागड़ में एक नया राज्य कायम होते देखा। अन्तिम हिन्दू सम्राट महाबली पृथ्वीराज के साथ मैंने इसी सामन्तसिंह के घोड़े तराइन के युद्ध क्षेत्र में शहाबुद्दीन गौरी से अड़ते देखे। खोये हुये राज्य को जयंतसिंह के घोड़ों से पुन: प्राप्त होते देखा। मैंने महारावल सीहड़देव के घोड़ों को देखा जिन्होंने बड़ौदा तक राज्य-विस्तार किया। मैंने वीरसिंहदेव और डूंगरसिंह के घोड़ों को देखा जिनसे बागड़ डूंगरपुर कहलाने लगा। मैंने महारावल गोपीनाथ के घोड़ों को देखा जिनसे गुजरात के सुल्तान अहमदशाह और फिर उसके बेटे महमदशाह को हारते, सेना को नष्ट होते, लुटते और भगाते देखा। मालवे के सुल्तान महमूद खिलजी को डूंगरपुर पर आक्रमण करते देखा और उसका सोमदास के घोड़ों द्वारा दिया गया करारा जवाब देखा। महाराणा संग्रामसिंह के साथ मैंने महारावल उदयसिंह के 12 हजार घोड़े खानवा के युद्ध क्षेत्र में दौड़ते देखे। अजमेर के गाँव हरमाड़ा के पास हाजीखाँ से लड़ते मैंने आसकरण के घोड़े देखे। मैंने वीरभान के पुत्र सूरजमल के घोड़े देखे जिसने अकेले ही मेवाड़ की फौज को डूंगरपुर पर आक्रमण करने से रोक लिया। उसी वीरभान चौहान के घोड़े मैंने माही नदी पर जूझते देखे और मेरे मुँह से निकल पड़ा-वाह डूंगरपुर! वाह!!

✻ ✻ ✻

दृश्य द्रुत गति से बदलते जा रहे थे। मुझे याद भी नहीं रहे कितने वीर पुरुष, कितने महापुरुष और कितने दिव्य पुरुष आये और चले गए। बीच में कुछ-कुछ दृश्य फिर भी याद हैं। मुझे माणिकराय से लेकर पृथ्वीराज तक की वंशपरम्परा याद है। उनकी तलवारें याद हैं, उनका बल याद है, उनकी हिम्मत याद है, उनकी उदारता याद है। मुझे बप्पयराज याद है जिसने अपने जीवन में 188 लड़ाइयाँ जीतीं। सांभर, अजमेर और नाडोल के प्राचीन गौरव और गौरव-गाथाएँ याद हैं। मुझे एक वीसलदेव याद है जिसने एक विद्याधर की सहायता से शाकम्भरी पर आधिपत्य जमा लिया। मुझे दूसरा वीसलदेव भी याद है जिसका राज्य विस्तार नर्बदा नदी तक था और जिसने कंथाकोट तक अपनी विजय-यात्राएँ पूर्ण की। भोज का बहनोई और राजमति का पति

तीसरा वीसलदेव भी याद है और वह चौथा वीसलदेव भी याद है जिसका राज्याधिकार दिल्ली पर हुआ था, जिसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ भारत को यवन-शून्य कर दिया। उसी का नाट्यशाला के रूप में बनाया हुआ अजमेर का ढाई दिन का झोंपड़ा याद है। मुझे अजमेर बसाने वाला अजयराज भी याद है जिसके पराक्रमी पुत्र अर्णोराज से सोमेश्वर का जन्म हुआ। सिंध के आक्रमण करने वाले तुर्क मुझे याद हैं और यह भी याद है कि अर्णोराज से कितनी बुरी तरह पिट कर भागे थे, आनासागर उस विजय की अमर यादगार के रूप में आज भी लहरा रहा है। मुझे अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज भी याद है जिसका राज्यविस्तार लाहौर से विंध्याचल तक था, जिसके हाथों अनेक बार शहाबुद्दीन गौरी को धूल चाटते देखा। उसका चामुण्डराय जैसा भीमकाय सामन्त भी याद है और मुझे याद है कि मेरे मुँह से कितनी बार निकल पड़ा था-वाह अजमेर! वाह!! धन्य राजस्थान! धन्य!!

✻ ✻ ✻

मैंने रावल भीमा को देखा जिसने राज्य सत्ता की महत्त्वाकांक्षा हल चलाते हुए भी पूर्ण कर ली तथा कच्छ का राज्य हस्तगत कर लिया। मैंने रावल जाम को देखा जिसने गिरनार के स्वामी चंगेजखां गौरी की दस हजार की सेना के छक्के छुड़ा दिये। मैंने केलाकोट के यशस्वी फूल धवलोत को देखा जिसने धरती को सुजला, सुफला और शस्यश्यामला बना दिया। उस फूल के पुत्र लाखा को देखा जिसकी वीरता और पराक्रम की कथाएँ आज भी जन-जन के कंठों में समाई हुई हैं। अपना समस्त राज्य चारणों को दान में देने वाले जाम ऊनड़ को देखा। फिरोजशाह तुगलक की विशाल सेनाओं को दो बार बुरी तरह खदेड़ते हुए मैंने जाम ऊनड़ बावनिया को देखा और मैं बोल उठा-वाह रे कच्छ! वाह!!

✻ ✻ ✻

अन्हिलवाड़ पाटन को बसाते हुए मैंने चावड़ा वनराज को देखा। पराक्रमी मूलराज सोलंकी को देखा जिसकी वीरता की धाक पश्चिम में कथाकोट से लेकर उत्तर में आबू तक, पूर्व में लाट देश से लेकर दक्षिण में सोरठ तक फैली हुई थी। मैंने भीमदेव को देखा जिसने सिंध के राजा हम्मुक को परास्त किया, लाट को जीता, धारानगरी को जीता और अन्त में भारत के प्रसिद्ध आतताई सुल्तान महमूद गजनवी से सोमनाथ के मंदिर की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग किया। मैंने बहुश्रुत सम्राट सिद्धराज जयसिंह को भी देखा जिसने अपना राज्य विस्तार मालवा, चौड़ा गौड़, कर्णाटक, गिरनार, किराडू, नाडोल और बागड़ तक कर दिखाया था। उसके सुयोग्य राज्यशासन में कला, संस्कृति और

धर्म का प्रचार देखा। बड़े-बड़े मन्दिरों को बनते देखा। स्वामिभक्त जगदेव परमार को देखा। बाल मूलराज को देखा जिसने कालिन्द्री के पास युद्ध में शहाबुद्दीन गौरी के दांत खट्टे कर दिये थे और मेरे मुँह से निकल पड़ा धन्य गुजरात! धन्य!!

✻ ✻ ✻

मैंने जूनागढ़ गिरनार के राव केहवाट नवघण और राव खेंगार को देखा। शक्ति, साहस और पराक्रम के अभूतपूर्व खेल देखे। मैंने वाला ऐभल को देखा जिसने अपने पुत्र आणा के रक्त से चारण को नहलाया। मैंने जाम सत्ता को देखा जिसने बादशाही सूबेदार शहाबुद्दीन अहमद को पछाड़ा। मैंने भाणजी जेठवा की रानी कल्लनवा को देखा जिसने मेर और रैबारियों की सेना से राणपुर तक अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया। मैंने बिना सिर योद्धाओं को सात-सात कोस तक लड़ते हुए चलते देखा। मैंने सरवहिया जैसा को देखा जिसने गुजरात के सुल्तान मुहम्मद बेगड़ा की नाक में दम कर दिखाया और जो अन्त तक भी उसके सामने नहीं झुका। मैंने गोहिल भीम के पुत्र अर्जुन और हमीर को देवपट्टण के सोमनाथ महादेव का ज्योतिर्लिंग ले जाते अल्लाउद्दीन से लड़ते और जूझते देखा और मेरे मुँह से बरबस निकल पड़ा-वाह सौराष्ट्र! वाह!!

✻ ✻ ✻

मैंने महोबे के राजा परमर्दिदेव को देखा। वेतवा के किनारे मैंने उसकी सहायता में लड़ते बांके वीर आल्हा और ऊदल के साथ उनकी माता देवलदेवी को देखा। दूसरी बार फिर उरई के पास आल्हा को पृथ्वीराज की सेना से लोमहर्षक युद्ध करते देखा। मैंने इतिहास-प्रसिद्ध कालिंजर के दुर्ग को देखा और उस पर अनवरत व भयानक युद्ध होते देखे। इसी दुर्ग पर मैंने कुतुबुद्दीन ऐबक, शमसुद्दीन, अल्तमश, गयासुद्दीन बलवन व नसीरूद्दीन महमूद की चढ़ाइयाँ देखी जिनमें रोंगटे खड़े करने वाली वीरता को नाचते देखा। मैंने गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह की रायसिन पर चढ़ाई देखी जहाँ दुर्गावती को सात सौ स्त्रियों सहित जौहर करते देखा। मैंने बाबर को चंदेरी के मेदिनीराय पर चढ आते देखा और शत्रु की आँधी के समक्ष मेदिनीराय को शाका करते देखा। चंदेल वंश की अन्तिम ज्योति कीर्तिपाल को शेरशाह से लड़ते देखा। गोंडवाने की अतुल सम्पत्ति को लूटने के लिये अकबर की ओर से आसफखाँ को सिंगोरगढ़ पर हमला करते देखा और उसका सामना करते हुए दोनों हाथों से तलवारें चलाते दलपतिशाह की विधवा रानी दुर्गावती को देखा। मैंने मधुकरशाह को देखा जिसने अकबर के सेनापति न्यामतकुली को नीचा दिखाया, जामकुलीखाँ को नीचा दिखाया, सैयदकुलीखां को नीचा दिखाया और अन्त में होनहार को नीचा दिखाया। मैंने मधुकरशाह के पुत्र

वीरसिंहदेव को देखा जिसके भय से हसनखां को भांडेर छोड़ कर भागते देखा, ईचीखां को एरछ छोड़कर भागते देखा, बाघजंग जांगड़ा को हथनौरा छोड़कर भागते देखा, मुगल थाने को बड़ौनी से भागते देखा, आंतरी के पास पराइछे गाँव में मैंने अबुलफजल को यमलोक भागते देखा, एरछ के पास जमालखां को यमलोक भागते देखा। बुन्देलखण्ड को कई बार मुगलों के हाथ जाते और पुनः वीरसिंहदेव के हाथों आते देखा। फिर इमलोटा के पास खड़गराय को प्राण खोकर भागते देखा और खमरोली के समीप मुगल सेनापति अब्दुल्लाखाँ को प्राण बचाकर भागते देखा और अन्त में वीरसिंह को ओड़छा का राजा बनते देखा। मैंने स्वयं शाहजहाँ को 60,000 मुगल सेना सहित चंपतराय की मार से भागते देखा। शहबाजखाँ, बाकीखाँ और फतहखाँ को कब्रों में जाते देखा। अन्धेरे से चंपतराय के पुरुषार्थ के सितारे को बाहर निकलते देखा, स्वातन्त्र्य भावना को जागते और गौरव से सिर ऊँचा उठाते देखा। उसी चंपतराय के आंगन में यशस्वी छत्रसाल का युद्ध-क्षेत्रों में जन्म देखा। छत्रसाल का मरहठों से गठबन्धन देखा। मुगल साम्राज्य को उनके समक्ष गुर्राते, फिर थर्राते, डगमगाते, घुटने टेकते और जर्जरित होते देखा। गौ, ब्राह्मण और हिन्दूत्व के अमर पुजारी वीर शिरोमणि छत्रसाल को मैं देखता ही रह गया और अन्त में थक कर कह उठा-वाह बुन्देलखण्ड! वाह!! धन्य मालवा! धन्य!!

✻ ✻ ✻

कितने नाम गिनाऊँ, और किस-किस का वर्णन करूँ? किसको आदर्श मानूं और किसको कम मानूं? किस धरती को श्रेष्ठ मानूं और किसे मरुस्थली कहूँ? मेरी आँखें धन्य हो गईं इन बदलते हुए दृश्यों को देखकर। मन चाहता है, काश! ये आँखें फिर कभी ऐसा दृश्य देख सकें। पर आखिर यह थे कौन? मेरे शरीर का रोम-रोम ही नहीं, मेरी स्मृति का कण-कण ही नहीं, इस धरती का चप्पा चप्पा, इतिहास का जर्रा-जर्रा और समय पट्ट का धागा-धागा कहता है-वे सभी निःसन्देह क्षत्रिय थे।

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

✻ ✻ ✻

प्रकरण : अठारह

धरती का सुहाग

युगों के दृश्य बदलते गए पर एक दृश्य पर मेरी आँख ठिठक गई। दृश्य पटल पर मैंने एक नारी को देखा। गौर वर्ण, सरोवर से सजल और बड़े-बड़े नेत्र, हरी-हरी साड़ी पहने ऊपर नदियों के गोटे लगे हुए थे। सलमें सितारों की जगमगाहट से उसका रूप कहीं अधिक जगमगा रहा था। उसके सतोगुणीय सौंदर्य के सागर में आनन्दातिरेक से उद्विग्न हो मेरा मन गहरे गोते लगा रहा था किन्तु मैंने देखा उसकी आँखों में नारायण की व्यथा समाई हुई थी। उसे एक दुष्ट पुरुष अपनी जांघ पर बिठाना चाहता था। वह उसकी हरी-हरी सुन्दर साड़ी का पल्ला खींच रहा था और वह अर्धनग्न नारी किसी दुखिया की करुण पुकार-सी पछाड़ खाती हुई मुझसे अभय माँग रही थी। उसकी अस्तव्यस्त केश-राशि मेरे पुरुषार्थ को चुनौती दे रही थी। मैंने सोचा यह दृश्य तो द्रौपदी का है और वह दुष्ट पुरुष शायद दुर्योधन है। शायद मैं द्वापर युग के चीरहरण का दृश्य देख रहा था, परन्तु जब मैंने आश्चर्य से मेरी खुद की तस्वीर को दृश्य पटल पर देखा तो संशय हुआ शायद वह कलियुग का ही कोई दृश्य है।

दृश्यपटल पर स्थितप्रज्ञ की भाँति मैं खड़ा था और वह द्रौपदी अपना परिचय दे रही थी-'मैं द्रोपदी नहीं धरती हूँ-तेरी स्त्री हूँ। सतीत्व ही मेरा एक मात्र धन है जिसे यह दुष्ट पुरुष बरबस लूट रहा है। मुझे बचाओ मेरे नाथ! मुझे बचाओ!!'

लेकिन मैं दृश्यपटल पर चुप ही खड़ा था।

उसने बताया-'मैं किसी एक की होकर नहीं रहना चाहती थी। मुझे अपनी बनाने के लिये कितने ही इतिहास रंगे गए पर तुम्हारे पूर्वजों ने मुझे बलपूर्वक अपनी बना लिया। मेरे लिये बड़े लम्बे-लम्बे युद्ध चले, लाखों का संहार हुआ, इतना कि मैं रक्तस्नाता हो गई। आखिर हार कर मैंने सोच ही लिया कि यह मुझे किसी भी कीमत पर छोड़ नहीं सकता। तभी मैंने अपना कुलटापन छोड़ा और मैं वीर भोग्या बनी। पर मुझे यदि ऐसा मालूम होता कि तेरे जीवित रहते मुझे कोई ले जा सकता है तो मैं किसी एक के घर साध्वी बनकर रहने की छलना में कभी नहीं छली जाती। होनहार ने मेरा सारा गर्व खंडित कर दिया, जो तेरे जैसा नाजोगा पति देखने को मिला अन्यथा मैं बहुत पहले ही किसी का पल्ला पकड़ लेती।'

लेकिन मैं दृश्यपटल पर चुप ही खड़ा रहा।

उसने मुझे याद दिलाया-'मेरे लिये तेरे पूर्वजों ने क्या नहीं किया? कौनसा पाप

नहीं किया? भाई-भाई आपस में मेरे लिये मर मिटे। पिता ने पुत्र को और पुत्र ने पिता को मारा, सिर्फ मेरे लिये। मेरे लिये ही एक ही युद्ध में तेरी बारह-बारह पीढ़ियाँ काम आई। मेरे लिये ही तेरी माँ बहिनों ने जलती ज्वालाओं में जलकर प्राण त्यागे, मेरे लिये ही तेरे पूर्वज केसरिया बाना पहन कर बिना सिर लड़ते रहे। मेरे लिये समस्त संसार में सर्वाधिक कीमत चुकाने वाले तेरे ही पूर्वज थे, इसीलिए जन्मजन्मान्तरों तक मैं तुम्हारे चरणों की दासी बनी रही। जीने के लिये मरते रहे और मरने के लिये जीते रहे, पर जिन्दा रहते मेरे किसी पति ने मेरा इस प्रकार परित्याग नहीं किया जिस प्रकार आज तू कर रहा है। जरा देख तो सही, तेरे जीते जी मुझे यह दुष्ट ले जा रहा है।'

लेकिन मैंने कुछ नहीं किया। दृश्यपट पर मौन खड़ा रहा। केवल इतना ही कहा,-'देवी! धन और धरती बंट कर रहेगी।'

उसने मुझे फटकारा,-'मूर्ख पतिदेव! कायर! शिखण्डी!' और भी न जाने कितनी गालियाँ उसने मुझे सुना दीं। उसने मुझे ललकारा,-'बहुत युग बाद तत्वज्ञानी बना है! आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध और महावीर ने तुझे समझाया था तब तू क्यों नहीं चुप रहा? सैकड़ों ऋषियों और मुनियों ने तुझे अहिंसा का उपदेश दिया उस समय तुमने अपनी तलवार को म्यन में क्यों नहीं डाला? कितने साहित्यकारों और कवियों ने तुझे काव्यमयी भाषा में समझाया! उस समय तेरी अकल क्या घास चरने गई थी जो आज तत्वदृष्टा का स्वांग बनाकर ज्ञान झाड़ रहा है? धन-सम्पत्ति बंट सकती है पर नारीत्व नहीं बांटा जा सकता। मैं तेरी सम्पत्ति नहीं, तेरी नारी हूँ, माँ हूँ, पुत्री और भगिनी हूँ, तेरी इज्जत और आबरू हूँ, तेरे घर की शोभा और सुख हूँ। तेरा तत्वज्ञान वेश्याओं के कोठे पर सुना, क्योंकि सरे बाजार उन्हीं के सतीत्व का बंटवारा हुआ करता है। मैं साध्वी हूँ। पीढ़ियों से तेरे कुल की कुलवधु हूँ।

'निर्वीर्य! यदि रूप के बाजार में ही बैठाना था तो दूल्हा बनकर तुम और तुम्हारे पूर्वजों ने मेरा पाणिग्रहण क्यों किया था? और पाणिग्रहण ही किया था तो वही पाणि आज एक पर-पुरुष पकड़ रहा है! अब तो कदम बढ़ा, एक तो कदम आगे आ।'

किन्तु मेरे कदम दृश्यपटल पर अडिग खड़े थे।

उसके ललाट पर बड़ी-सी एक सिन्दूरी लाल बिन्दी थी, जिसे आंचल से पोंछते हुए उसने कहा-'यह तो पूर्वजों की खून की बिन्दी थी।' उसने मुझे अपनी माँग बताई, वह भी वैसे ही लाल रंग की थी। कहा-'यह भी तेरे पूर्वजों का पवित्र खून था जिससे मैंने अपनी माँग भरी थी। अपने ही पतियों को मारकर उन्हीं के खून से मांग भर कर मैं सुहागिन रहा करती थी और शायद असंख्य पतियों की हत्या का पाप ही है जिसके प्रायश्चित में मैं आज यह फल भोग रही हूँ। अफसोस तो यह है कि उनमें से एक भी मैंने जिन्दा नहीं छोड़ा, अन्यथा अपने ही हाथों मैं अपनी माँग नहीं पोंछती। मुझे क्या मालूम था कि मेरी सासुओं की कोख किसी दिन इस प्रकार दगा दे जायेगी!'

उसने यह कहते हुए माँग का खून भी पोंछ लिया पर मेरा खून तो शून्य बिन्दु की शीतलता तक जमा हुआ था, जमा हुआ ही रहा।

मैंने देखा, उस दुष्ट दुर्योधन ने निर्लज्जतापूर्वक अपना हाथ बढ़ाकर उस रमणी को आबद्ध कर बलपूर्वक अपनी जाँघ पर बैठा लिया। बाण लगी हुई हरिणी के समान धरती ने एक कातर चीत्कार की। यदि क्षीरसागर की नागशय्या पर नारायण उस समय सोये हुए न होते तो धरती की ऐसी करुणोत्पादक व्यथा से व्याकुल होकर सुदर्शन चक्र ले नंगे पैरों उसकी सहायता के लिये दौड़े आते। धरती ने करुण रुदन किया। पहाड़ों को पिघलाने वाली और नदियों को सुन्न करने वाली उसकी एक एक हिचकी मेरे रोम रोम में वेदना के बांध तोड़ रही थी परन्तु दृश्यपटल पर खड़ी मेरी तस्वीर हिली भी नहीं। अकस्मात् धरती ने अन्तिम पुकार की। मुझे वह दृश्य याद आया जब मगरमच्छ से ग्रसित डूबते हुए गजराज ने अपनी सूंड से एक कमल पुष्प को तोड़कर भगवान की सहायता माँगी थी और उस धरती ने भी उसी प्रकार कमल के स्थान पर अपने हाथ को उठाकर चूड़ा दिखाया; सिर्फ इतना ही कहा,-'यह तेरा पहनाया हुआ है।'

छनकता हुआ चूड़ा मेरी ओर चुनौती दे रहा था। मौन होकर भी उसने मुझे बहुत कुछ कह दिया, फिर भी मैं चुप हो खड़ा रहा।

अन्त में उस दुष्ट दुर्योधन ने धरती के अधोवस्त्र का स्पर्श कर लिया। धरती जो अभी तक द्रौपदी बनी हुई थी सहसा क्रोध और अपमान की उत्तेजना से कालिका सी दिखाई देने लगी। छविग्रह के सभी दर्शकों में कुहराम मच गया। आने वाले दृश्य को न देखने के लिये मैंने आंखें बंद कर ली तब मुझे उस मेदिनी का कंठस्वर सुनाई दिया, 'देखते क्या हो? इस वस्त्र का भी अपहरण कर मेरे इस बेशर्म पतिदेव को दे दो ताकि यह इसे पहन ले। मैं तो इसे मर्द समझकर सधवा होने के भ्रम में थी पर यह तो जनाना ही नहीं, नामर्द है।'

रील टूट गई। छविग्रह प्रकाश से जगमगा उठा। मेरे पास बैठे रहने वाले पड़ौसी ने मुझसे पूछा-'क्या भाई साहब! क्या आप बता सकते हैं,-यह कौन था जो भूमि का स्वामी बना हुआ चित्रपट पर आया था?' मैं उसको परिचय नहीं बता सका। मैंने सावधानी से अपना मुँह उसकी ओर से फिरा लिया ताकि वह मुझे पहचान कर भंडाफोड़ न कर दे कि कलाकार साहब यहीं बैठे हैं। मैंने उसके प्रश्न का उत्तर मुँह घुमाये ही दिया-'नाम तो नहीं जानता पर शायद यह भी एक क्षत्रिय था।'

पड़ौसी दर्शक ने भौंहें ऊँची उठाकर आश्चर्य से कहा-'अच्छा!'

प्रकाश फिर बुझ गया, लोगों की नजरें फिर दृश्यपट की ओर घूम गई। मैंने भी छुटकारे की सांस ली।

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

प्रकरण : उन्नीस

पुनरागमन

स्वर्ग के रमणीक दृश्य एक के बाद एक आने लगे। सुन्दर और मनोरम घाटियाँ, टेढ़ी-मेढ़ी सुन्दर राहें, दोनों ओर कभी न कुम्हलाने वाले अनुपम रंगों वाले आकर्षक पुष्प, लहलहा कर स्वागत करने वाली झाड़ियाँ, अमृतफलों से लदे हुए घने वृक्ष, मलय पर्वत से अधिक शीतलता और सौरभ प्रदान करने वाली वायु के नशीले झोंके, चांद सूर्य के बिना भी प्रकाशवान व उज्ज्वल आकाश में देवकुमारी के खिलौनों से गुड़कते हुए श्वेत और सुन्दर बादल, निर्भीक और पुष्ट मृगशावकों की मनमोहक अठखेलियाँ, किन्नर और यक्षों की अक्षत् यौवनाओं के सुरीले गलों से निकली हुई अल्हड़ राग की तानों के कुछ टूटे शब्द, कहीं गंधर्वों के तानपूरों और बंशियों से निकली हुई मातृ-भूमि के विरह-विप्रलंभ के संगीत-सी लोरें, सिद्ध पुरुषों के देदीप्यमान और उड़ते हुए विमान दिखाई दे रहे थे और उनके बीच मैं मचलता-कूदता, मस्त होकर गुनगुनाता हुआ जा रहा था। स्वर्ग लोक की सुन्दर दृश्यावलि के बीच बढ़ती हुई मेरी तस्वीर को देखकर इस बार मैंने संतोष की सांस ली शायद इस बार वैसा ही कोई करुण और तड़फाने वाला दृश्य नहीं दिखाई देगा। सत्कर्मों के फलस्वरूप ही स्वर्ग मिला है, इसलिए यहाँ तो मेरा आदर सत्कार ही होगा और बाद में अपने पड़ौसी दर्शकों को बता सकूंगा कि वह चित्र मेरा ही था-अपनी प्रियतमा और सदापत्नी धरती के त्याग स्वरूप ही मुझे स्वर्ग मिला है। मेरा त्याग कितना कठिन था किन्तु उसका फल कितना महान् है! जो जन-हित में अपने कलेजे पर पत्थर रखकर इतना त्याग करते हैं उन्हें हमेशा अच्छा ही फल मिलता है। जो त्याग प्रारम्भ में विष के समान लगता है और परिणाम में अमृत के समान लगता हो वही त्याग सात्विक है। सोचते-सोचते मैं अपनी कुर्सी पर डटकर बैठ गया और दृश्यपट को उत्सुकता से देखने लगा।

स्वर्ग में मैं बढा जा रहा था। एक स्थान पर मैंने बहुत बड़ा शामियाना देखा। नीचे इन्द्र-वरुणादि समस्त देवता बैठे हुए थे। कोई सत्संग या उत्सव चल रहा था जो अब समाप्त हो गया था। मैंने देखा राम, कृष्ण, अर्जुन, भीमादि भी वहीं थे-उठ कर जा रहे हैं। मैं दौड़ा-दौड़ा उनके पीछे गया और अपना परिचय देने लगा-'मैं आप ही की संतान हूँ। आप लोग शायद मुझे नहीं पहचानते किन्तु मैंने मृत्युलोक में आपकी बहुत-सी तस्वीरें देखीं, इसलिए मैंने आपको देखते ही पहचान लिया। मैं भी सूर्यवंशी हूँ।' मैंने सिर झुका कर उनका अभिवादन किया, किन्तु उन्होंने मुझे आशीर्वाद नहीं

दिया, उल्टा दुत्कारा-'हट, भाग जा यहाँ से! तुम, और हमारी संतान! यह मुँह और मसूर की दाल! चले जाओ यहाँ से। लोगों को छलकपट से अपनाने की राजनीति मृत्युलोक में चला करती है। यहाँ हम नहीं ठगे जा सकते। तुम हमारी संतान नहीं हो। अपने बाप को त्याग कर दूसरों की संतान बनने में लज्जा नहीं आती? क्या यही कलियुग का धर्म है? हमने तो गुणरहित अपने धर्म को भी श्रेष्ठ बताया था। हमारी परम्पराएँ ही कुछ और थीं। हमारी स्त्रियों के अपहरण पर हमने अपहर्त्ता के साम्राज्य और सर्वस्व तक का संहार कर दिया था और कल तुम्हारी जोरू धरती का अपहरण हुआ और तुमने परम्परा डाली है टुकुर-टुकुर देखते रहने की और आज तुम परम्पराएँ डाल रहे हो तुम्हारी ही स्त्री को कुदृष्टि से देखने वाले का कृपाभाजन बनने के लिये चाटुकारी करने की। अपने श्रेष्ठ धर्म संस्कृति को छोड़कर तुम राह चलते हुए किसी भले आदमी को पकड़ कर बाप कहने लग जाते हो। भाग जाओ यहाँ से!' अभिमन्यु पास ही खड़ा था। उसने मेरे मुँह पर थूक दिया।

मैं स्तंभित, लज्जित और किंकर्तव्यविमूढ सा खड़ा था। अपना समझ कर जिनके पास दौड़ा हुआ गया था, उन्होंने ही मुझे तज दिया। वे चले गए और मैं हारा, थका, निराश होकर काफी देर खड़ा रहा। फिर सोचा इनका क्या दोष है? मेरे और इनके बीच युगों का अन्तर पड़ गया है। चलो, अभी-अभी जो मृत्युलोक से आए हैं-वे भी कहीं मिल सकते हैं। स्वर्ग पहुँच कर भी मैं किसके पास ठहरूँ, सोचता सोचता चल पड़ा।

इस बार मुझे सुन्दर-सुन्दर दृश्य और रमणीक स्थान कुछ भी अच्छे नहीं लगे। मैं अपनी ही व्यथा और समस्याओं में उलझा हुआ बढ रहा था, कि एक जगह कुछ परिचित से लोग दिखाई दिये। मैंने देखा महाबली पृथ्वीराज चौहान खड़े हैं, पास ही महाराणा सांगा, प्रताप और हमीर खड़े हैं। मैंने उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और समाचार देना शुरू किया-'हिन्दू सम्राट! आपने अनुपम बहादुरी का परिचय देकर भी जिस तख्त को खो दिया, उसे हमने वापस प्राप्त कर लिया है। शताब्दियों बाद आज हिन्दुस्तान हिन्दुओं का हुआ है। महाराणा संग्रामसिंह जी! आपने जिस उद्देश्य से दो लाख की सेना इकट्ठी कर खानवा के युद्ध क्षेत्र में संग्राम छेड़ा था फिर भी सफल नहीं हो सके, उस सफलता को हमने बिना रक्त की एक बूंद बहाए, बिना किसी की जान खोये, केवल नारों और जुलूसों से ऐसे बाबर को समुद्र पार भगा दिया है जिसके राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था। महाराणा प्रतापसिंह जी! आज आपका मेवाड़ स्वतंत्र है, सारा राजस्थान ही नहीं, समूचा भारत आजाद है। पच्चीस वर्ष तक कष्ट सहन कर, हल्दीघाटी का लोमहर्षक युद्ध लड़कर भी आप जिन अरमानों को पूरा नहीं कर सके, वे अरमान अब पूर्णत: पूरे हो गए हैं। आज आपके मेवाड़ में सुख और

समृद्धि है, लहलहाते हुए खेत हैं। वीरान मगरे भी अब इतने जन-संकुचित हो गए हैं कि भूमि पर शयन किया, घास की रोटियाँ खाई, पत्तलों पर भोजन किया, वही चित्तौड़ अब हमारा हो गया है। गाडोलिया लुहार उसमें विजयी होकर घुसे हैं। यदि आप अपनी पूर्व प्रतिज्ञानुसार स्वर्ग में भी धरती पर शयन और पत्तलों में भोजन करते हो तो अब ऐसा करना छोड़ दीजिये। इस आजादी की अनेक वर्षगाँठ मना चुके हैं। आज हम पूर्ण रूप से सुखी हैं। हमारे घरों में आज बीसियों भेड़ें और पचासों बकरियाँ हैं। अकेला मैं तीन सहकारी समितियों का सदस्य था। विधानसभा का भी पन्द्रह वर्ष तक लगातार सदस्य रह चुका हूँ। आपके वंशज अब भी हिन्दुआ सूरज कहलाते हैं। हमें किसी चीज की कमी नहीं है। राज्य करने से अब हमें छुट्टी मिल गई। घर बैठे ही हमें बड़ी-बड़ी रकमें हाथ खर्च के रूप में मिलती है। आपके और दूसरे उमरावों को अब न तो आवश्यक रूप से घोड़े रखने पड़ते और न युद्ध के लिये ही सदा तैयार रहना पड़ता। घर बैठे ही 22 वर्ष तक उन्हें रुपया ब्याज सहित मिलता जावेगा।'

लेकिन इतने उत्साहप्रद समाचार सुनने के बाद भी उनमें से कोई बोला नहीं। पृथ्वीराज ने तो मुँह फिरा लिया। सांगा ने नीचे देखना शुरू कर दिया। प्रताप कुछ क्रोधित दिखाई दे रहे थे परन्तु हमीर से चुप नहीं रहा गया, बोला-'शर्म नहीं आती बकवास करते! हमारे घावों को फिर हरा करना चाहते हो। तुम तुम्हारा काला मुँह कहीं और जाकर करो। हमारे तो सारे इतिहास और परिश्रम पर तुमने पानी फिरा दिया और फिर हम ही से अपनी कायरता और नपुंसकता की प्रशंसा करवाना चाहते हो। धूर्त कहीं के! भागो यहाँ से-भाग जाओ!' मैं समझ नहीं पाया, आखिर उनकी अप्रसन्नता का कारण क्या था? मैंने सोचा यह तो हमारे इतिहास के जोशीले आदमी थे, कुछ युवक भी थे। सोचा किसी संजीदे आदमी के पास जाऊँ। उसके पास जाऊँ जिसने कर्तव्य के लिये आराम से कभी रोटी भी नहीं खाई, जिसके सामने मारवाड़ जैसे राज्य का प्रलोभन भी सिर ऊँचा नहीं कर सका और अन्त में कर्तव्य के लिये जिसने मातृभूमि को सैंकड़ों मील दूर छोड़कर क्षिप्रा के एकान्त किनारे पर अपनी समाधि बनाई। छोड़ने के बाद एक बार भी घूम कर अपने घर को नहीं देखा। उस दुर्गादास के पास जाऊँ, शायद वह बेटा कहकर मुझे स्नेहसम्बोधन देगा, मेरी राजनीति की प्रशंसा कर धैर्य रखने का आदेश देगा। सौभाग्यवश वे मुझे दिख ही गए, मैंने उन्हें सारा हाल बताया-मारवाड़ का हाल बताया और यह भी कहा कि हमीर और अभिमन्यु किस बुरी तरह से मुझसे पेश आए। दुर्गाबाबा आखिर दुर्गाबाबा निकले। उन्होंने मुझे बड़े ध्यान और धैर्य से सुना।उनकी सहृदयता ने मुझे खूब प्रभावित भी किया पर ज्यों ही मैं पेट भर बातें कह चुका, उन्होंने कहा,-'पर तुम आखिर यहाँ कैसे आये?'

मैंने कहा-'यह तो स्वर्ग है, कोई बुरी जगह तो है नहीं। सभी इसी की कामना करते हैं और मुझे तो यह पत्नी त्याग के स्वल्प त्याग पर ही अनायास ही प्राप्त हुआ है। पृथ्वी पर मेरे महान् उत्तदायित्वों की पूर्ति हो गई और इसीलिए भाग्यवानों की श्रेणी में मेरी गणना होकर फलस्वरूप यह स्वर्ग मिला है।'

उन्होंने कहा-'जब तेरे सैकड़ों भाई-बन्धु नरक की यातनाओं से पृथ्वीलोक में कलबला रहे हैं, तब तुझे स्वर्ग के सुख भोग की लालसा प्राप्त ही कैसे हुई? निर्दयी! क्या स्वजनों की व्यथा और तेरे अपने समाज की व्याधि भी तेरा कलेजा नहीं कंपा सकी, जो तू ऐसे समय में स्वर्गिक सुखों की खोज में उन्हें छोड़कर यहाँ आया है? मृत्युलोक में तो तू उनके लिये इतने गाल बजाता था, खूंटे तोड़ता था और अब उनके लिये तेरे अन्तःकरण में कोई माया-ममता और स्नेहादि भाव नहीं रहे। तुम आदमी हो या घनचक्कर!'

उनकी आँख से निकले हुए तेज के सामने मेरे समस्त तर्क और तत्वज्ञान की घिग्गी बंध गई। जिस स्वर्ग-प्राप्ति के लिये अभी-अभी मैं इतना पुलकित हो रहा था और भाग्य की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहा था वही स्वर्ग अब मुझे काटता हुआ दिखाई दिया। इतने बड़े लोक में सिर छिपाने जितनी भी जगह नहीं दिखाई दे रही थी। इतने ही में एक पत्र-वाहक ने आकर मुझे एक बन्द लिफाफा दिया। उत्सुकता और भय-मिश्रित भावों से मैंने उसे खोल डाला। वह निमंत्रण पत्र था जो किसी इतर लोक से आया हुआ था, जिसमें मुझे भोजन, विश्राम और निवास तक के लिये आमन्त्रित किया गया था। निमंत्रण पत्र के नीचे विभीषण, शल्य, भीमसिंह जसड़ोत, शिलादित्य (सिलहदी) और भी न जाने कितनों के हस्ताक्षर थे। स्वर्ग छोड़ने का मैंने तत्काल ही निर्णय कर लिया और मुट्ठियाँ बन्द कर वहाँ से भागा। अचानक मार्ग में उर्वशी से टकरा गया। उसने आँखें तरेर कर कहा-'आदमी हो या घनचक्कर?' मैं उसे प्रत्युत्तर देने ही वाला था-'कि मैं पथ के बांई ओर चल रहा था, मेरी कोई गलती नहीं थी।'पर मैं कुछ कहूँ-कहूँ उससे पहले ही नारदजी का भीषण अट्टहास सुनाई दिया-'घनचक्कर नहीं यह भी एक क्षत्रिय है!'

एक छत पर से मेनका ने अपना गला निकाला और मुझे देखकर खिन-खिन कर हंसने लगी।

चित्रपट चल रहा था और दृश्य बदलते जा रहे थे।

* * *

प्रकरण : बीस

नाजोगे?

दृश्यपटल पर मुझे अपना गाँव दिखाई दे रहा था। मैं सिहर उठा, अब जाने क्या देखने को मिलेगा? इतने ही में गाँव बड़ा होता गया; दृश्यपट की सीमाओं से उसकी सीमाएँ बाहर निकलने लगीं। एक छोटा सा घर लगातार बड़ा होता जा रहा था और कुछ ही क्षणों में वही घर सारे दृश्यपटल पर छा गया। मैंने पहचाना यह तो मेरा ही घर था। मैंने उसमें चार व्यक्ति देखे। उनकी शक्ल-सूरत मुझसे कुछ मिलती-जुलती सी थी। उनके बीच जो गर्मागरम वार्तालाप हो रहा था उससे मैंने सार रूप यही निष्कर्ष निकाला कि यह चारों मेरे प्रपौत्र हैं। मेरा घर तो कभी का अदालतों की डिक्री से कुर्क होकर नीलाम हो चुका था; सिर्फ दो सौ पत्थर जो मेरे समय की सम्पत्ति थी, बचकर रह गई थी और आज उसी के बंटवारे के लिये झगड़ा हो रहा था।

मेरे सबसे बड़े प्रपौत्र का नाम ठाकुर हीराचन्द है। वह कलैक्टर के दफ्तर में चपरासी है। दिन भर दफ्तर में और घर में वही फराश का काम करता है। इस समय वह उसके बच्चों को सुलाकर घर आया है और मांग कर रहा था कि वह सबसे बड़ा है और उनके पूर्वजों का रिवाज था कि बड़ा पाटवी होता है और उसे ही सबसे अधिक हिस्सा मिलता है, बाकी के भाइयों को सिर्फ गुजारे के लिये थोड़ी-सी सम्पत्ति मिलती है। इसलिए दन दो सौ पत्थरों में से 101 तो अकेले उसको मिलने चाहिए और बाकी 99 में से शेष तीनों को 33-33 पत्थर मिलने चाहिए। वह उन पर अपनी नौकरी का भी रौब झाड़ रहा था कि वे नहीं मानेंगे तो वह कलैक्टर साहब की धर्मपत्नी से कहलवा कर उनको जेल में डलवा देगा।

मेरे दूसरे प्रपौत्रका नाम श्री सिगरेटासिंह था जो ग्वालियर की जयाजिराव कॉटन मिल्स में मजदूर था। वहीं किसी मजदूर की तलाकी हुई एक महिला रधिया से उसने विवाह किया था और उसका राधादेवी नाम देकर गाँव लाया जो दस रोज हुए झनकू बस ड्राइवर के साथ भाग गई थी। तार द्वारा खबर पहुँचने पर झनकू से वैर के 150 रू. मांगने आया था।

मेरे तीसरे प्रपौत्र का नाम नेकीराम था, जिसके पास बनारसी इक्का और लखनवी घोड़ा था। दिन भर दाने-पानी के जोर से नहीं बल्कि चाबुक के जोर से चला करता था। आज जब स्टेशन पर कोई तांगा नहीं था तो सरकारी आडिट पार्टी के तीन सदस्य आए थे जिनसे मुँह मांगे पैसे झड़वा लाया था और वे पैसे थे कुल 61 नये पैसे; उसकी कमाई का सबसे सुनहरा दिन-हमेशा से उसे दुगुने और किसी दिन से तो तिगुने दाम मिले थे। इसलिए आज वह अपने अड़ियल घोड़े को सदा की भाँति गालियाँ न देकर बापू-बापू कहकर सहला रहा था।

मेरा चौथा प्रपौत्र था दीनू, जो अपने कुटुम्ब का हितैषी, संगठन का हिमायती और दूसरों के लिये त्याग करने का आदर्श रखा करता था, लेकिन उसकी मजदूरी थी दिन भर भीख माँगना। आज नगरपालिका की ओर से सार्वजनिक तारतों के उद्‌घाटन पर स्वास्थ्य मंत्री को दिये एक नागरिक सहभोज पर गया था, जहाँ उसे काफी पत्तलें, झूठन, डोनों में सब्जियाँ और अधजले सिगरेट के टुकड़े प्राप्त हुए थे। अपनी दिन भर की इस बड़ी भारी कमाई को लेकर वह खुशी-खुशी आया था और समान बंटवारे के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए अपने तीनों भाइयों को इसी संग्रह पर दावत देकर अपनी सहृदयता और उदारता का परिचय दे रहा था। उसकी इस शानदार दावत के रंग को 200 पत्थरों के झगड़े ने भंग कर दिया।

तू-तू मैं-मैं इतनी बढ़ गई थी कि अस्पताल के दो चार पड़ौसियों के 8-10 बच्चे समीप आने का दुस्साहस न करते हुए दूर से ही संजय की भाँति इस महाभारत का आँखों देखा आनन्द उठा रहे थे। चपरासी कह रहा था, आधा हिस्सा उस अकेले का है और तांगे वाला तथा मजदूर कह रहा था कि धन और धरती के समान बंटवारे का सिद्धान्त आज से तीन पीढ़ी पहले सरकार द्वारा स्वीकृत हो चुका है। संगठन के हिमायती दीनू ने सहज उदारता दिखाते हुए अपने हिस्से का परित्याग और शेष तीन का बराबर बंटवारे का प्रस्ताव रखा। इस पर आँखें तरेरते हुए ठाकुर हीराचन्द ने घुड़की दी,-'चल भिखमंगे कहीं के! अपने हिस्से का तो धक्का भी मैं खाऊँगा, पर अपना हक किसी हालत में नहीं छोड़ सकता, समझे! मेरे घर बार है, इज्जतदार आदमी हूँ, तेरी तरह भिखमंगा नहीं!'

सहसा दृश्यपटल पर मेरी तस्वीर उतर आई और मैंने उन्हें समझाना शुरू

किया, 'यह पत्थर बहुत तुच्छ चीज है, उसके लिये तुम क्यों लड़ते हो, मैं तुम्हारा प्रपितामह हूँ।' इस पर उदार और सहिष्णु दिखने वाला संगठन का हिमायती भिखारी दीनू मुझ पर झपट पड़ा और उसने मेरा गला पकड़ लिया,-'आईये प्रपितामहजी! उपदेश देने की तो शायद आपकी पुरानी आदत होगी, पर यह तो बताइये, अब हमारे पास लड़ने झगड़ने, शौर्य और वीरता प्रदर्शित करने, स्वधर्म-पालन और इतिहास बनाने के लिये इन 200 पत्थरों के सिवाय रहा ही क्या है? हमारी इस दर्दनाक दुर्दशा के कारण तुम हो, प्रपितामह जी! इस पर भी हमारी मध्यस्थता की बेशर्मी करना केवल आप जैसे साहसी लोगों से ही सम्भव है। यदि हमारे पूर्वजों और हमारे बीच आप जैसी निकम्मी और नाजोगी पीढ़ी न होती तो मैं होटलों के झूठे दोने कभी नहीं चाटता। मेरे पराक्रम दिखाने का क्षेत्र होटलों के पिछवाड़े में निर्बल याचकों और भूखे कुत्तों के बीच रह गया है। इस सबके उत्तरदायी तुम हो-मेरे प्यारे नपुंसक प्रपितामहजी........!'

ऐसा लग रहा था जैसे सभी फिल्म-निर्माताओं ने मेरे विरुद्ध इस प्रकार अपमानित और लज्जित करने का भयानक षड़यंत्र रच रखा हो। मैं अंधेरे में कुर्सियों से टकराता हुआ, कई दर्शकों से अन्धे की उपाधियाँ धारण करता हुआ, भद्र महिलाओं से अंग्रेजी की क्रोधित गालियों की फुसफुसाहट लेता हुआ, छविग्रह से बाहर भागने लगा। उठते समय मेरे पड़ौसी दर्शकों ने पूछा,-'क्यों साहब! क्या आप जा रहे हैं? मार्मिक दृश्य तो अभी शुरू हुए ही हैं और फिल्म भी अभी काफी बाकी है।' लेकिन मेरे मर्म को सहनशक्ति का अभाव महसूस हो रहा था और जितनी फिल्म देख ली थी उससे अधिक देखने की कोई इच्छा नहीं रही। बड़बड़ाता हुआ मैं बाहर आया। टिकिटघर पर भीड़ लगी हुई थी। किसी ने पूछा-'क्यों भाई साहब! फिल्म कैसी है?' दूसरे ने पूछा,-'क्यों जी फिल्म खत्म हो गई क्या?' चौथे ने कहा,-'क्यों साहब, आपकी बोलती बन्द क्यों हो गई? गूंगे हो गए हो क्या?' और मैंने एक ठहाका सुना। कान बन्द कर मैं वहाँ से भागा और घर आकर सांस ली। देखा मेरे मकान पर पड़े हुए वे दो सौ पत्थर ज्यों के त्यों पड़े हैं। पर लग रहा था जैसे व्यंग्य में वे सभी मुझ पर मुस्करा रहे हैं और जैसे कह रहे हैं,-'तुम नि:सन्देह एक क्षत्रिय हो।'

प्रकरण : इक्कीस

स्वप्न

छविग्रह से शारीरिक व मानसिक रूप से थका-हारा मैं लौटा तो निराशा के कोहरे में आस्था का सूर्य डूब चुका था। प्रेरणा से परिपूर्ण असंख्य दृश्य जिन आँखों से देखे थे उन्हीं से अन्तिम दो तीन व्यंग्यात्मक दृश्य देखकर मेरे चिंतन में किंकर्तव्यविमूढ़ता का अंधेरा गहरा होता जा रहा था। अब तो दर्शक भी नहीं रहे, अकेला खो गया अपने आप में, सो गया अपनी शय्या में।

फिर वही दृश्यों का सिलसिला, किन्तु इस बार दृश्यपट नहीं था, दर्शकों का जमघट नहीं, ध्वनि यंत्रों का शोर शराबा नहीं, मैं ही दर्शक, मैं ही दृश्य और मैं ही ध्वनि संयोजक। कुछ खो गया था जिसे ढूंढना चाहता था। क्या वह संजीवनी थी जो मूर्छित जीवन में नवप्राण का अभिसिंचन कर दे? क्या वह आस्था और आत्मविश्वास की तूलिका थी जिसके बिना कर्म चित्रित ही नहीं होता? क्या वह चिंतन के सूत्र थे जिनसे आत्म-प्रेरणा के ताने-बाने बुने जाते हैं?

लो आत्मयज्ञ की ज्वाला धधक उठी। शंख ध्वनि ने नवप्रभात की घोषणा की। वज्र निश्चय के समक्ष समस्त अंधकार क्षीण होने लगे। मेरे भीतर का भीष्म-पितामह बोल उठा-यही है वह संजीवनी। भीतर के कुमारिल भट्ट ने कहा-संकल्प लो, संकल्प। फरफराती ध्वजा से त्वरित, कृपाण की धार पर नृत्य करता, उठी हुई भुजा के सहारे उठता हुआ एक संकल्प, एक विराट संकल्प, मेरे भीतर समा गया। मुझे राह मिल गई।

चल पड़ा बिसाती की तरह-जीवन के व्यापार करता, उस निर्झर की तरह जो केवल बहना जानता है। इस युग में इतनी तपस्या क्या कम होती है? वन्य प्रदेश भी जनाकुल हो गए, निर्झर के किनारे तीर्थ हो गए? मैंने मोरों को पूछा आकाश में गरजने वाले बादलों के घिर जाने से तुम्हारा क्या सम्बन्ध है, कि तुम नाच उठते हो। वे नृत्य में मस्त थे, प्रश्न से भयभीत नृत्य करना ही भूल गए। मैंने पतंगों को पूछा यज्ञ प्रकाश से तुम्हारा क्या सम्बन्ध है कि तुम बिना

सोचे-समझे ही आग में कूद पड़ते हो। वे केवल इतना कह पाये, हमें बहका कर कोई नहीं लाया, अपने आप आए हैं। पर उत्तर के साथ ठहर गए। पतंगों के जलने और मोरों के नाचते से मुझे क्या शिकायत थी भला! मैं तो कारण जानना चाहता था। पर वे कारण नहीं बता सके।

हठात् मैं अपने आपको ही यह सवाल पूछ बैठा। मैं बिसाती की तरह क्यों चल रहा हूँ? निर्झर की तरह क्यों बह रहा हूँ? जीवन देने और लेने वाले सौदागर मिल गये, किनारों को तीर्थ बनाने वाले यात्री मिल गये-क्या यही था मेरे अभियान का कारण? पर यह तो परिणाम है-कारण नहीं। उलझ कर थक गया। थक कर रुक गया। बिना कारण जाने कर्म हो भी तो कैसे?

किसी ने कहा-''आगे बढ़ो, रुको मत।'' पूछ ही बैठा-''क्यों?'' उत्तर था, ''तुम्हें जीवन के व्यापारी मिलेंगे, पवित्र तीर्थ यात्री मिलेंगे।'' कितना भ्रामक था उत्तर।

'मुझे नहीं चाहिए व्यापारी। क्या करूंगा धनी बनकर। मुझे नहीं चाहिए वे यात्री जो मुझे पवित्र सिद्ध कर दें। कैसे मिट जायेगी मेरी अपवित्रता उनकी घोषणा मात्र से। और फिर क्या करूंगा उस पवित्रता को लेकर ही। मुझे कुछ नहीं चाहिए।'

'पर मुझे चाहिए, तुम मेरे लिये आगे बढो, मेरे लिये कर्म करो।'

'हाँ यह तो कोई उत्तर है, पर कौन हो तुम और क्या सम्बन्ध है तुम्हारा मुझ से?'

'मैं कौन हूँ इसका उत्तर दिया नहीं जाता, खोजा जाता है, प्राप्त किया जाता है। हाँ, सम्बन्ध की व्याख्या कर देता हूँ, तुम मेरे हो बस।'

उत्तर का तीर हृदय के निशाने पर पूरा बैठा। उस उत्तर का मेरे पास कोई प्रत्युत्तर नहीं था। आत्मीयता का प्रत्युत्तर आत्मीयता ही है। सचमुच मैं प्यासा था। अपनों की खोज का प्यासा। मुझे प्यार की प्यास थी जिसे ज्ञान का अहंकार नहीं बुझा सकता था। मुझे कर्म की थकान थी जिसे उपार्जन का अहंकार नहीं मिटा सकता था। योग का आधार मिल गया, संगठन का सूत्र मिल गया और मेरे अस्तित्व का औचित्य भी मिल गया।

मेरी सत्ता के स्वामी की चाह को पूरा करना ही होगा। पतंगों के बिना सोचे समझे प्रकाश में खो जाने का कारण मिल गया। बादलों के गर्जन के साथ मोरों के नाचने का सम्बन्ध स्पष्ट होगया।

पुरातन पंथ पर मेरी चिर नवीन प्रेरणा फिर चल पड़ी। इस बार प्रत्येक कदम के साथ थकान के स्थान पर उमंग बढ़ने लगी। बंजर भूमि में पुष्प खिलने लगे, पत्थरों में संगीत फूट पड़ा, मनुष्य उससे प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता था? नये इतिहास की कलम चल पड़ी, पटकथा ही बदल गई, भविष्य के बाल चित्र दृश्यपट पर रेखांकित होने लगे। अब ज्ञात हुआ कलाकार से निर्देशक कितना बड़ा होता है। कितना सजीव हो गया चित्रपट, कितना अलौकिक और आह्लादकारी बन गया संगीत, कितना समृद्ध बन गया यह लूटा हुआ जीवन। तन-मन-धन और जीवन की समस्त दरिद्रताओं से मुक्ति मिलने लगी। समूचा युग लक्ष्मी, भवानी और सरस्वती तीनों का सहयोगी और सामूहिक क्रीड़ा स्थल बन गया। नई धार्मिक और सांस्कृतिक क्रान्ति का सूत्रपात हो गया।

शंख बज उठा। सृजन का सत्य स्वरूप, ब्रह्मा का नाद, ब्रह्मा को साकार करने वाला अनादि शंख। चिद्रूप भगवान विष्णु का पुष्टि करने वाला और मंगल स्वरूप विषपायी शंकर का कल्याणकारक शंख भी बज उठा। यह तीनों ध्वनियाँ फिर एक ही शंख से निनादित हो उठीं, पाञ्चजन्य से।

सुदूर क्षितिज पर नये ग्राम समूहों की आकृतियँ उभर रही हैं। ग्रामवासी सुशिक्षित, संस्कारी और सदाशयी हैं। श्रम उनका देवता है, लक्ष्य उनकी आसक्ति है, कर्तव्यबोध ही उनकी प्रेरणा है। यह भव्य संस्कृति का जीर्णोद्धार है। यही जीवन यज्ञ की यज्ञ शाला है।

नींद टूट गई, उसे टूटना ही था पर स्वप्न नहीं टूटा क्योंकि उसे साकार होना ही था। क्षत्रिय तो वे भी थे और ये भी हैं।

चित्रपट अब भी चल रहा है और दृश्य अब भी बदलते जा रहे हैं।

✻ ✻ ✻